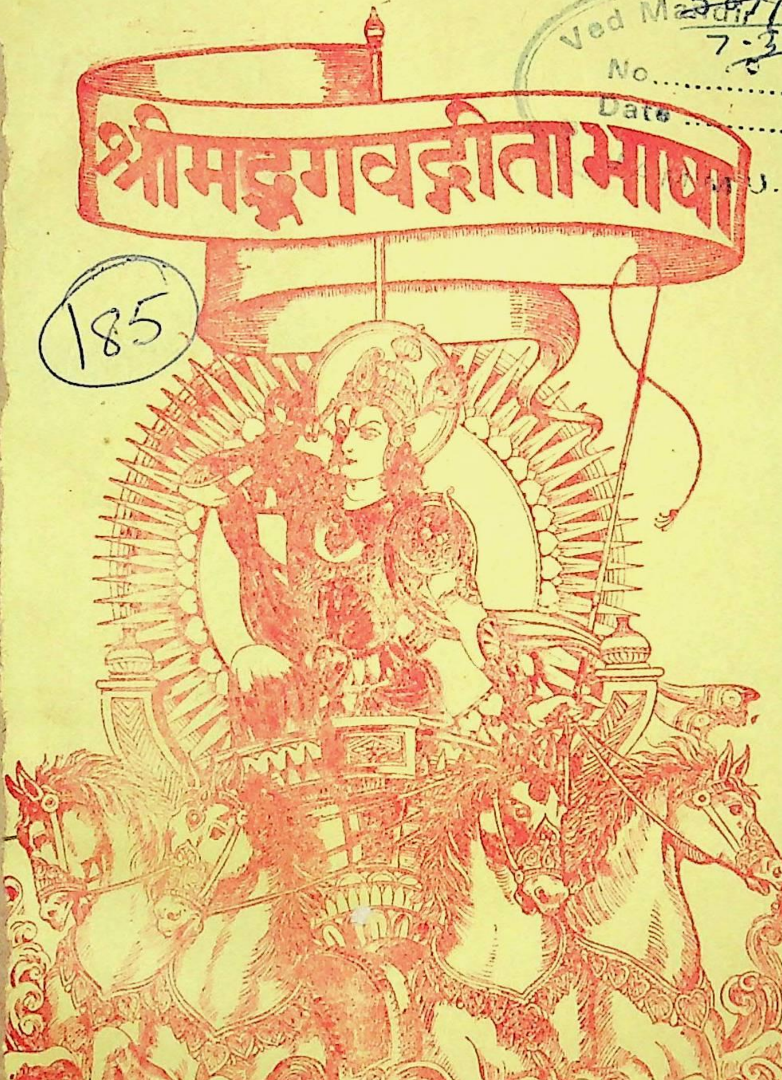
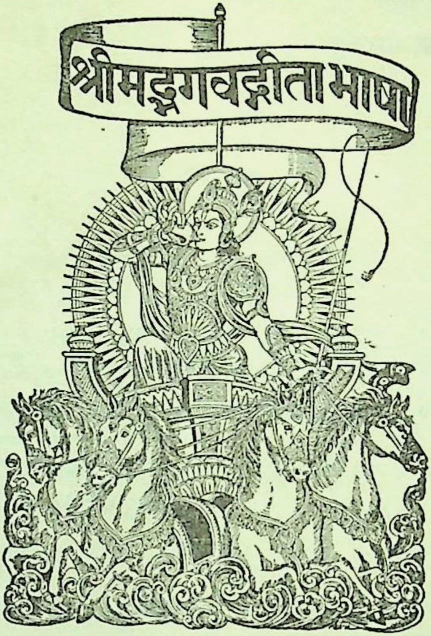
185

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा



मूल्य पचास पैसे



गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक—

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं०	१९८१	से २०३१ तक	६,७५,०००
सं०	२०३२	छत्तीसवाँ संस्करण	१,००,०००
सं०	२०३३	सैंतीसवाँ संस्करण	५०,०००
		कुल	८,२५,०००

आठ लाख, पच्चीस हजार

मूल्य पचास पैसे

मुद्रक—हिन्दुस्तानी आर्ट कॉटेज, लखनऊ

॥ श्रीहरिः ॥

गीता-माहात्म्य

जो मनुष्य शुद्धचित्त होकर प्रेमपूर्वक इस पवित्र गीता-शास्त्रका पाठ करता है, वह भय और शोक आदिसे रहित होकर विष्णुधामको प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

जो मनुष्य सदा गीताका पाठ करनेवाला है तथा प्राणायाममें तत्पर रहता है, उसके इस जन्ममें और पूर्व-जन्ममें किये हुए समस्त पाप निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

जलमें प्रतिदिन किया हुआ स्नान मनुष्योंके केवल शारीरिक मलका नाश करता है, परंतु गीताज्ञानरूप जलमें एक बार भी किया हुआ स्नान संसार-मलको नष्ट करने-वाला है ॥ ३ ॥

जो साक्षात् कमलनाभ भगवान् विष्णुके मुखकमलसे प्रकट हुई है, उस गीताका ही भलीभाँति गान (अर्थसहित

स्वाध्याय) करना चाहिये, अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ४ ॥

जो महाभारतका अमृतोपम सार है तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे प्रकट हुआ है, उस गीतारूप गङ्गाजलको पी लेनेपर पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ५ ॥

संपूर्ण उपनिषदें गौके समान हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण दुहनेवाले हैं, अर्जुन बछड़ा है तथा महान् गीतामृत ही उस गौका दुग्ध है और शुद्ध बुद्धिवाला श्रेष्ठ मनुष्य ही उसका भोक्ता है ॥ ६ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका कहा हुआ गीताशास्त्र ही एकमात्र उत्तम शास्त्र है, भगवान् देवकीनन्दन ही एकमात्र महान् देवता हैं, उनके नाम ही एकमात्र मन्त्र हैं और उन भगवान्‌की सेवा ही एकमात्र कर्तव्य कर्म है ॥ ७ ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगीताजीकी महिमा

वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य वाणीद्वारा वर्णन करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें संपूर्ण वेदोंका सार-सार संग्रह किया गया है। इसका संस्कृत इतना सुन्दर और सरल है कि थोड़ा अभ्यास करनेसे मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है, परंतु इसका आशय इतना गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदा ही नवीन बना रहता है। एवं एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा, भक्तिसहित विचार करनेसे इसके पद-पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्मका वर्णन जिस प्रकार इस गीताशास्त्रमें किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थोंमें मिलना कठिन है, क्योंकि प्रायः उनमें कुछ-न-कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है, परंतु "श्रीमद्भगवद्गीता" एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र भगवान्‌ने कहा है कि जिसमें एक

भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है। इसीलिये श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमें गीताजीका वर्णन करनेके उपरान्त कहा है कि—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

गीता सुगीता करने योग्य है अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णुभगवान्के मुखारविन्दसे निकली हुई है, (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है ? तथा स्वयं भगवान्ने भी इसका माहात्म्य अन्तमें वर्णन किया है (अध्याय १८ श्लोक ६८ से ७१ तक)।

इस गीताशास्त्रमें मनुष्यमात्रका अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण-आश्रममें स्थित होवे, परंतु भगवान्में श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये, क्योंकि अपने भक्तोंमें ही इसका प्रचार करनेके लिये भगवान्ने आज्ञा दी है तथा यह भी कहा है कि स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले मनुष्य भी मेरे परायण होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं (अ० ९ श्लोक ३२) एवं अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त होते हैं (अ० १८

श्लोक ४६)। इन सबपर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि परमात्माकी प्राप्तिमें सभीका अधिकार है।

परंतु उक्त विषयके मर्मको न समझनेके कारण बहुत-से मनुष्य जिन्होंने श्रीगीताजीका केवल नाममात्र ही सुना है, वे कह दिया करते हैं कि गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये ही है और वे अपने बालकोंको भी इसी भयसे श्रीगीताजीका अभ्यास नहीं कराते कि गीताके ज्ञानसे कदाचित् लड़का घर छोड़कर संन्यासी न हो जाय, किंतु उनको विचार करना चाहिये कि मोहके कारण अपने क्षात्रधर्मसे विमुख होकर भिक्षाके अन्नसे निर्वाह करनेके लिये तैयार हुए अर्जुनने जिस परम रहस्यमय गीताके उपदेशसे आजीवन गृहस्थमें रहकर अपने कर्तव्यका पालन किया, उस गीताशास्त्रका यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है।

अतएव कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको उचित है कि मोहको त्याग करके अतिशय श्रद्धा, भक्तिपूर्वक अपने बालकोंको अर्थ और भावके सहित श्रीगीताजीका अध्ययन करावें एवं स्वयं भी इसका पठन और मनन करते हुए भगवान्के आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर हो जायं। क्योंकि अति दुर्लभ मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी दुःखमूलक क्षणभङ्गुर भोगोंके भोगनेमें नष्ट करना उचित नहीं है।

श्रीगीताजीका प्रधान विषय

श्रीगीताजीमें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मुख्य दो मार्ग बताये हैं—एक सांख्ययोग, दूसरा कर्मयोग। उनमें—

(१) संपूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भांति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं, ऐसे समझकर मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होना (अ० ५ श्लो० ८, ९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवा अन्य किसीके भी होनेपनेका भाव न रहना। यह तो सांख्ययोगका साधन है।

(२) और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि-असिद्धिमें समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका

त्याग करके, भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कर्मोंका आचरण करना। (अ० २ श्लो० ४८, अ० ५ श्लो० १०) तथा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीर-से सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (अ० ६ श्लो० ४७), यह निष्कामकर्मयोगका साधन है।

उक्त दोनों साधनोंका परिणाम एक होनेके कारण वास्तवमें अभिन्न माने गये हैं (अ० ५ श्लो० ४, ५) परंतु साधनकालमें अधिकारीभेदसे दोनोंका भेद होनेके कारण दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न बताये गये हैं (अ० ३ श्लो० ३)। इसलिये एक पुरुष दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं चल सकता, जैसे श्रीगङ्गाजीपर जानेके लिये दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं जा सकता। उक्त साधनोंमें कर्मयोगका साधन संन्यास-आश्रममें नहीं बन सकता, क्योंकि संन्यास-आश्रममें कर्मोंका स्वरूपसे भी त्याग कहा है और सांख्ययोगका साधन सभी आश्रमोंमें बन सकता है।

यदि कहो कि सांख्ययोगको भगवान्‌ने संन्यासके नामसे कहा है, इसलिये उसका संन्यास-आश्रममें ही अधिकार है,

गृहस्थमें नहीं, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दूसरे अध्यायमें श्लो० ११ से ३० तक जो सांख्यनिष्ठाका उपदेश किया गया है उसके अनुसार भी भगवान्ने जगह-जगह अर्जुनको युद्ध करनेकी योग्यता दिखायी है। यदि गृहस्थमें सांख्ययोगका अधिकार ही नहीं होता तो इस प्रकार भगवान्‌का कहना कैसे बन सकता। हां, इतनी विशेषता अवश्य है कि सांख्यमार्गका अधिकारी देहाभिमानसे रहित होना चाहिये। क्योंकि जबतक शरीरमें अहंभाव रहता है, तबतक सांख्ययोगका साधन भली प्रकार समझमें नहीं आता। इसीसे भगवान्ने सांख्ययोगको कठिन बताया है। (गीता अ० ५ श्लो० ६) और निष्काम कर्मयोग साधनमें सुगम होनेके कारण अर्जुनके प्रति जगह-जगह कहा है कि तूं निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ निष्कामकर्मयोगका आचरण कर।

अथ ध्यानम्

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

अर्थ—जिसकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए है, जिसकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंका भी ईश्वर और संपूर्ण जगत्का आधार है, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त है, नील मेघके समान जिसका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिसके संपूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किया जाता है, जो संपूर्ण लोकोंका स्वामी है, जो जन्ममरणरूप भयका नाश करनेवाला है, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति, कमलनेत्र विष्णुभगवान्को मैं (सिरसे) प्रणाम करता हूं ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ।।

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अङ्ग, पद,

क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिसका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्‌गत हुए मनसे जिसका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिसके अन्तको नहीं जानते उस (परमपुरुष नारायण) देवके लिये मेरा नमस्कार है ।



श्रीबाँकेबिहारी

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा

पहिला अध्याय

धृतराष्ट्र बोला, हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे हुए युद्धकी इच्छावाले मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ? ।१। इसपर संजय बोला, उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा । २ ।

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखिये । ३ । इस सेनामें बड़े-बड़े धनुषोंवाले युद्धमें भीम और अर्जुनके समान बहुत-से शूरवीर हैं, जैसे सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद । ४ । और धृष्टकेतु, चेकितान तथा बलवान् काशिराज,

पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैब्य । ५ । और पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पांचों पुत्र यह सब ही महारथी हैं । ६ । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हमारे पक्षमें भी जो-जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये, आपके जाननेके लिये मेरी सेनाके जो-जो सेनापति हैं, उनको कहता हूँ । ७ । एक तो स्वयं आप और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा । ८ । तथा और भी बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शस्त्र-अस्त्रोंसे युक्त मेरे लिये जीवनकी आशाको त्यागनेवाले सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं । ९ । भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकारसे अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है । १० । इसलिये सब मोर्चोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सब-के-सब ही निःसंदेह भीष्मपितामहकी ही सब ओरसे रक्षा करें । ११ । इस प्रकार द्रोणाचार्यसे कहते हुए दुर्योधनके वचनोंको सुनकर कौरवोंमें

वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्मने उस दुर्योधनके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्चस्वरसे सिंहकी नादके समान गर्जकर शङ्ख बजाया ।१२। उसके उपरान्त शङ्ख और नगारे तथा ढोल, मृदंग और नृसिंहादि बाजे एक साथ ही बजे, उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ ।१३। इसके अनन्तर सफेद घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुनने भी अलौकिक शङ्ख बजाये ।१४। उनमें श्रीकृष्ण महाराजने पाञ्चजन्य नामक शङ्ख और अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया, भयानक कर्मवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया ।१५। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामक शङ्ख और नकुल तथा सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामवाले शङ्ख बजाये ।१६। श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी और धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि ।१७। तथा राजा द्रुपद और द्रौपदीके पांचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, इन सबने हे राजन् ! अलग-अलग शङ्ख बजाये ।१८। और उस भयानक शब्दने आकाश और पृथ्वीको भी

शब्दायमान करते हुए धृतराष्ट्र-पुत्रोंके हृदय विदीर्ण कर दिये। १६। हे राजन्! उसके उपरान्त कपि-ध्वज अर्जुनने खड़े हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंको देखकर उस शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय धनुष उठाकर हृषी-केश श्रीकृष्ण महाराजसे यह वचन कहा, हे अच्युत! मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा करिये। २०, २१। जबतक मैं इन स्थित हुए युद्धकी कामनावालोंको अच्छी प्रकार देख लूं कि इस युद्ध-रूप व्यापारमें मुझे किन-किनके साथ युद्ध करना योग्य है। २२। दुर्बुद्धि दुर्योधनका युद्धमें कल्याण चाहनेवाले जो-जो ये राजालोग इस सेनामें आये हैं, उन युद्ध करनेवालोंको मैं देखूंगा। २३।

संजय बोला, हे धृतराष्ट्र! अर्जुनद्वारा इस प्रकार कहे हुए महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों सेनाओंके बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने और संपूर्ण राजाओंके सामने उत्तम रथको खड़ा करके ऐसे कहा कि हे पार्थ! इन इकट्ठे हुए कौरवोंको देख। २४, २५। उसके उपरान्त पृथा-पुत्र अर्जुनने उन दोनों ही सेनाओंमें स्थित हुए पिताके भाइयोंको, पितामहोंको, आचार्योंको,

मामोंको, भाइयोंको, पुत्रोंको, पौत्रोंको तथा मित्रों-को, ससुरोंको और सुहृदोंको भी देखा। २६। इस प्रकार उन खड़े हुए सम्पूर्ण बन्धुओंको देखकर वह अत्यन्त करुणासे युक्त हुआ कुन्तीपुत्र अर्जुन शोक करता हुआ यह बोला। २७।

हे कृष्ण! इस युद्धकी इच्छावाले खड़े हुए स्वजनसमुदायको देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं और मुख भी सूखा जाता है और मेरे शरीरमें कम्प तथा रोमाञ्च होता है। २८, २९। तथा हाथ-से गाण्डीव धनुष गिरता है और त्वचा भी बहुत जलती है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इस-लिये मैं खड़ा रहनेको भी समर्थ नहीं हूं। ३०। हे केशव! लक्षणोंको भी विपरीत ही देखता हूं तथा युद्धमें अपने कुलको मारकर कल्याण भी नहीं देखता। ३१। हे कृष्ण! मैं विजय नहीं चाहता और राज्य तथा सुखोंको भी नहीं चाहता, हे गोविन्द! हमें राज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा भोगोंसे और जीवनसे भी क्या प्रयोजन है। ३२। क्योंकि हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादिक इच्छित हैं, वे ही यह सब धन और जीवनकी आशाको त्याग

कर युद्धमें खड़े हैं। ३३। जो कि गुरुजन, ताऊ, चाचे, लड़के और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं। ३४। इसलिये हे मधुसूदन! मुझे मारनेपर भी अथवा तीन लोकके राज्यके लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथिवीके लिये तो कहना ही क्या है। ३५। हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी, इन आततायियोंको मारकर तो हमें पाप ही लगेगा। ३६। इससे हे माधव! अपने बान्धव धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके लिये हम योग्य नहीं हैं, क्योंकि अपने कुटुम्बको मारकर हम कैसे सुखी होंगे। ३७। यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए यह लोग कुलके नाशकृत दोषको और मित्रोंके साथ विरोध करनेमें पापको नहीं देखते हैं। ३८। परंतु हे जनार्दन! कुलके नाश करनेसे होते हुए दोषको जाननेवाले हमलोगोंको इस पापसे हटनेके लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये। ३९। क्योंकि कुलके नाश होनेसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्मके नाश होनेसे सम्पूर्ण कुलको पाप भी बहुत दबा लेता है। ४०। तथा हे कृष्ण! पापके

अधिक बढ़ जानेसे कुलकी स्त्रियां दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके दूषित होनेपर वर्ण-संकर उत्पन्न होता है। ४१। और वह वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लोप हुई पिण्ड और जलकी क्रिया-वाले इनके पितर लोग भी गिर जाते हैं। ४२। और इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं। ४३। तथा हे जनार्दन! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंका अनन्त कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हमने सुना है। ४४।

अहो ! शोक है कि हमलोग बुद्धिमान होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हुए हैं जो कि, राज्य और सुखके लोभसे अपने कुलको मारनेके लिये उद्यत हुए हैं। ४५। यदि मुझ शस्त्र रहित, न सामना करनेवालेको शस्त्रधारी धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मारें तो वह मारना भी मेरे लिये अति कल्याणकारक होगा। ४६।

संजय बोला कि रणभूमिमें शोकसे उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर बाणसहित

धनुषको त्यागकर रथके पिछले भागमें बैठ गया ।। ४७ ।।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "अर्जुन-विषादयोग" नामक पहिला अध्याय ।।१।।

दूसरा अध्याय

संजय बोला कि, पूर्वोक्त प्रकारसे करुणा करके व्याप्त और आंसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उस अर्जुनके प्रति भगवान् मधुसूदनने यह वचन कहा ।। १ ।।

हे अर्जुन ! तुमको इस विषमस्थलमें यह अज्ञान किस हेतुसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण किया गया है, न स्वर्गको देने-वाला है, न कीर्तिको करनेवाला है। २ । इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, यह तेरे योग्य नहीं है, हे परंतप ! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको त्याग-कर युद्धके लिए खड़ा हो ।। ३ ।।

तब अर्जुन बोला कि हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि-में भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके प्रति किस प्रकार

बाणोंकरके युद्ध करूंगा, क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं । ४ । इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी भोगना कल्याणकारक समझता हूं, क्योंकि गुरुजनोंको मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगोंको ही तो भोगूंगा । ५ । और हमलोग यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये क्या करना श्रेष्ठ है अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे सामने खड़े हैं ।६। इसलिये कायरतारूप दोष करके उपहत हुए स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं, आपको पूछता हूं; जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूं, इसलिये आपके शरण हुए मेरेको शिक्षा दीजिए ।७। क्योंकि भूमिमें निष्कण्टक धनधान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके स्वामीपनेको प्राप्त होकर भी, मैं उस उपायको नहीं देखता हूं जो कि मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर कर सके । ८ ।

संजय बोला, हे राजन्! निद्राको जीतनेवाला अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्द भगवान्‌को युद्ध नहीं करूंगा ऐसे स्पष्ट कहकर चुप हो गया।९। उसके उपरान्त हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजने दोनों सेनाओंके बीचमें उस शोकयुक्त अर्जुनको हंसते हुए-से यह वचन कहा।१०।

हे अर्जुन! तूं न शोक करने योग्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है परंतु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी शोक नहीं करते हैं।११। क्योंकि आत्मा नित्य है इसलिए शोक करना अयुक्त है। वास्तवमें न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था अथवा तू नहीं था अथवा यह राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।१२। किंतु जैसे जीवात्माकी इस देहमें कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें धीर पुरुष नहीं मोहित होता। अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्थारूप

स्थूल शरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनारूप सूक्ष्म शरीरका विकार भी अज्ञानसे ही आत्मामें भासता है, इसलिये तत्त्वको जाननेवाला धीर पुरुष इस विषयमें नहीं मोहित होता है ।१३। हे कुन्तीपुत्र! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो क्षणभंगुर और अनित्य हैं इस-लिये हे भरतवंशी अर्जुन ! उनको तूं सहन कर ।१४। क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! दुःख-सुखको समान समझने-वाले जिस धीर पुरुषको यह इन्द्रियोंके विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्षके लिये योग्य होता है । १५। और हे अर्जुन ! असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत्का अभाव नहीं है, इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है ।१६। इस न्यायके अनुसार नाशरहित तो उसको जान कि, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, क्योंकि इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ।१७। और इस नाशरहित अप्रमेय नित्य-स्वरूप जीवात्माके यह सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं, इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! तूं युद्ध कर ।१८।

जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा
जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते
हैं; क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न मारा
जाता है । १९ । यह आत्मा किसी कालमें भी न
जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा
हो करके फिर होनेवाला है; क्योंकि यह अजन्मा,
नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीरके नाश होने
पर भी यह नाश नहीं होता है ।२०। हे पृथापुत्र
अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य,
अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे
किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता
है ।२१। और यदि तूं कहे कि मैं तो शरीरोंके
वियोगका शोक करता हूं तो यह भी उचित नहीं
है, क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर
दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा
पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको
प्राप्त होता है । २२ । हे अर्जुन ! इस आत्माको
शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं
जला सकती है तथा इसको जल नहीं गीला कर
सकते हैं और वायु नहीं सुखा सकता है । २३

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है । २४ । यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियोंका अविषय और यह आत्मा अचिन्त्य अर्थात् मनका अविषय और यह आत्मा विकार-रहित अर्थात् न बदलनेवाला कहा गया है, इससे हे अर्जुन ! इस आत्माको ऐसा जानकर तूं शोक करनेको योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है । २५ ।

यदि तूं इसको सदा जन्मने और सदा मरने-वाला माने तो भी, हे अर्जुन ! इस प्रकार शोक करनेको योग्य नहीं है ।२६। क्योंकि ऐसा होनेसे तो जन्मनेवालेकी निश्चित मृत्यु और मरनेवालेका निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ, इससे भी तूं इस बिना उपायवाले विषयमें शोक करनेको योग्य नहीं है । २७। यह भीष्मादिकोंके शरीर मायामय होनेसे अनित्य हैं, इससे शरीरोंके लिये भी शोक करना उचित नहीं, क्योंकि हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहिले बिना शरीरवाले और मरनेके बाद भी बिना

शरीरवाले ही हैं, केवल बीचमें ही शरीरवाले प्रतीत होते हैं, फिर उस विषयमें क्या चिन्ता है । २८। हे अर्जुन ! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है, इसलिये कोई महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्यकी ज्यों इसके तत्त्वको कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों सुनता है और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्माको नहीं जानता ।२९। हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीरमें सदा ही अवध्य है* इसलिये सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके लिये तूं शोक करनेको योग्य नहीं है ।३०।

और अपने धर्मको देखकर भी तूं भय करनेको योग्य नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्तव्य क्षत्रियके लिये नहीं है ।३१। हे पार्थ ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं ।३२। और यदि तूं इस धर्मयुक्त संग्रामको नहीं करेगा तो स्वधर्मको और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होगा ।३३।

* जिसका वध नहीं किया जा सके ।

और सब लोग तेरी बहुत कालतक रहनेवाली अपकीर्तिको भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरुषके लिये मरणसे भी अधिक बुरी होती है।३४। और जिनके तूं बहुत माननीय होकर भी अब तुच्छताको प्राप्त होगा, वे महारथीलोग तुझे भयके कारण युद्धसे उपराम हुआ मानेंगे।३५। और तेरे बैरीलोग तेरे सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए बहुत-से न कहने योग्य वचनोंको कहेंगे, फिर उससे अधिक दुःख क्या होगा?।३६। इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकारसे अच्छा है, क्योंकि या तो मरकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथ्वीको भोगेगा, इससे हे अर्जुन! युद्धके लिये निश्चयवाला होकर खड़ा हो।३७।

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजयको समान समझकर उसके उपरान्त युद्धके लिये तैयार हो, इस प्रकार युद्ध करने से तूं पापको नहीं प्राप्त होगा।३८।

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके*

* अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

विषयमें कही गई और इसीको अब निष्काम-कर्मयोगके* विषयमें सुन, कि जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तूं कर्मोंके बन्धनको अच्छी तरहसे नाश करेगा ।३९। इस निष्कामकर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं होता है इसलिये इस निष्कामकर्म-योगरूप धर्मका थोड़ा भी साधन जन्ममृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है ।४०। हे अर्जुन! इस कल्याणमार्गमें निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है और अज्ञानी (सकामी) पुरुषोंकी बुद्धियां बहुत भेदोंवाली अनन्त होती हैं ।४१। हे अर्जुन! जो सकामी पुरुष केवल फलश्रुतिमें प्रीति रखनेवाले, स्वर्गको ही परम श्रेष्ठ माननेवाले, इससे बढ़कर और कुछ नहीं है ऐसे कहनेवाले हैं, वे अविवेकी-जन जन्मरूप कर्मफलको देनेवाली और भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये बहुत-सी क्रियाओंके विस्तारवाली, इस प्रकारकी जिस दिखाऊ शोभा-युक्त वाणीको कहते हैं ।४२, ४३। उस वाणीद्वारा

---

* अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये ।

हरे हुए चित्तवाले, तथा भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तिवाले, उन पुरुषोंके अन्तःकरणमें निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।४४। हे अर्जुन! सब वेद तीनों गुणोंके कार्यरूप संसारको विषय करनेवाले अर्थात् प्रकाश करनेवाले हैं, इसलिये तूं असंसारी अर्थात् निष्कामी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित नित्य वस्तुमें स्थित तथा योग*क्षेमको† न चाहनेवाला और आत्मपरायण हो।४५। क्योंकि मनुष्यका सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त होनेपर छोटे जलाशयमें जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्मको जाननेवाले ब्राह्मणका भी सब वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रहता है, अर्थात् जैसे बड़े जलाशयके प्राप्त हो जानेपर जलके लिये छोटे जलाशयोंकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होनेपर आनन्दके लिये वेदोंकी आवश्यकता नहीं रहती।४६। इससे तेरा कर्म करनेमात्रमें ही अधिकार होवे, फलमें कभी नहीं और तूं कर्मोंके फलको वासनावाला भी मत हो

* अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम योग है।

† प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम क्षेम है।

तथा तेरी कर्म न करनेमें प्रीति न होवे । ४७ । हे धनंजय ! आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्मोंको कर, यह समत्वभाव* ही योग नामसे कहा जाता है । ४८ । इस समत्वरूप बुद्धियोगसे सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ है, इसलिये हे धनंजय ! समत्व-बुद्धियोगका आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फलकी वासनावाले अत्यन्त दीन हैं ।४९। समत्व-बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य, पाप दोनोंको इस लोकमें ही त्याग देता है अर्थात् उनसे लिपायमान नहीं होता, इससे समत्व-बुद्धियोगके लिये ही चेष्टा कर, यह समत्व-बुद्धिरूप योग ही कर्मोंमें चतुरता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है । ५० । क्योंकि बुद्धियोगयुक्त ज्ञानीजन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलको त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे छूटे हुए निर्दोष अर्थात् अमृतमय परमपदको प्राप्त होते हैं । ५१ । हे अर्जुन ! जिस कालमें तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल-को बिल्कुल तर जायगी तब तूं सुनने योग्य और

* जो कुछ भी कर्म किया जाय उसके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके फलमें समभाव रहनेका नाम 'समत्व' है ।

सुने हुएके वैराग्यको प्राप्त होगा ।५२। जब तेरी अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको सुननेसे विचलित हुई बुद्धि परमात्माके स्वरूपमें अचल और स्थिर ठहर जायगी तब तूं समत्वरूप योगको प्राप्त होगा । ५३।

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन-ने पूछा हे केशव! समाधिमें स्थित स्थिर बुद्धिवाले पुरुषका क्या लक्षण है ? और स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ? । ५४ ।

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित संपूर्ण कामनाओंको त्याग देता है, उस कालमें आत्मासे ही आत्मामें संतुष्ट हुआ स्थिरबुद्धिवाला कहा जाता है ।५५। तथा दुःखोंकी प्राप्तिमें उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखोंकी प्राप्तिमें दूर हो गई है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।५६। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ, उन-उन शुभ तथा अशुभ वस्तुओंको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर

है ।५७। और कछुआ अपने अंगोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही यह पुरुष जब सब ओरसे अपनी इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके विषयोंसे समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।५८। यद्यपि इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको न ग्रहण करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु राग नहीं निवृत्त होता और इस पुरुषका तो राग भी परमात्माको साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है ।५९। और हे अर्जुन! जिससे कि यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके भी मनको यह प्रमथन-स्वभाववाली इन्द्रियां बलात्कारसे हर लेती हैं ।६०। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि उन सम्पूर्ण इन्द्रियों-को वशमें करके समाहित-चित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवे; क्योंकि जिस पुरुषके इन्द्रियां वशमें होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है ।६१।

हे अर्जुन! मनसहित इन्द्रियोंको वशमें करके मेरे परायण न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है और विषयोंको चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और

कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।६२। क्रोधसे अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेकसे स्मरणशक्ति १ मित हो जाती है और स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिके नाश होनेसे यह पुरुष अपने श्रेय-साधनसे गिर जाता है।६३। परंतु स्वाधीन अन्तःकरणवाला पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको भोगता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छताको प्राप्त होता है।६४। उस निर्मलताके होनेपर इसके संपूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है।६५। हे अर्जुन! साधनरहित पुरुषके अन्तःकरणमें श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती ह और उस अयुक्तके अन्तःकरणमें आस्तिकभाव भी नहीं होता है और बिना आस्तिक-भाववाले पुरुषको शान्ति भी नहीं होती; फिर शान्तिरहित पुरुषको सुख कैसे हो सकता है?।६६। क्योंकि जलमें वायु नावको जैसे हर लेता है वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंके बीचमें जिस

इन्द्रियके साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हरण कर लेती है। ६७। इससे हे महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियां सब प्रकार इन्द्रियोंके विषयोंसे वशमें की हुई होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है। ६८। और हे अर्जुन! संपूर्ण भूतप्राणियोंके लिये जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध-बोधस्वरूप परमानन्दमें भगवत्को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान् क्षणभंगुर सांसारिक सुखमें सब भूतप्राणी जागते हैं, तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रि है। ६९। जैसे सब ओरसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रके प्रति नाना नदियोंके जल, उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही जिस स्थिरबुद्धि पुरुषके प्रति संपूर्ण भोग किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वह पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, न कि भोगोंको चाहनेवाला।७०। क्योंकि जो पुरुष संपूर्ण कामनाओंको त्यागकर, ममतारहित और अहंकाररहित, स्पृहारहित हुआ बर्तता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। ७१। हे अर्जुन! यह ब्रह्मको

प्राप्त हुए पुरुषकी स्थिति है, इसको प्राप्त होकर मोहित नहीं होता है और अन्तकालमें भी इस निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।७२।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें
"सांख्ययोग" नामक दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

इसपर अर्जुनने प्रश्न किया कि हे जनार्दन! यदि कर्मोंकी अपेक्षा ज्ञान आपके श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव! मुझे भयंकर कर्ममें क्यों लगाते हैं?।१। तथा आप मिले हुए-से वचनसे मेरी बुद्धिको मोहित-सी करते हैं, इसलिये उस एक बातको निश्चय करके कहिये, कि जिससे मैं कल्याणको प्राप्त होऊं। २। इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा* मेरेद्वारा

* साधनकी परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकाष्ठाका नाम 'निष्ठा' है।

पहिले कही गयी है, ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे* और योगियोंकी निष्कामकर्मयोगसे† । ३ । परंतु किसी भी मार्गके अनुसार कर्मोंको स्वरूपसे त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मनुष्य न तो कर्मोंके न करनेसे निष्कर्मताको‡ प्राप्त होता है और न कर्मोंको त्यागनेमात्रसे भगवत्साक्षात्काररूप सिद्धि-को प्राप्त होता है । ४ । तथा सर्वथा कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता; क्योंकि कोई भी पुरुष किसी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है, निःसन्देह सब ही पुरुष प्रकृति-

* मायासे उत्पन्न हुए संपूर्ण गुण ही गुणोंमें वर्तते हैं, ऐसे समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली संपूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी, सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहनेका नाम 'ज्ञानयोग' है। इसीको 'संन्यास', 'सांख्ययोग' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

† फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवत्-अर्थ समत्वबुद्धिसे कर्म करनेका नाम 'निष्कामकर्मयोग' है। इसीको 'समत्वयोग', 'बुद्धियोग', 'कर्मयोग', 'तदर्थकर्म', 'मदर्थकर्म', 'मत्कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

‡ जिस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं अर्थात् फल उत्पन्न नहीं कर सकते, उस अवस्थाका नाम 'निष्कर्मता' है ।

से उत्पन्न हुए गुणोंद्वारा परवश हुए कर्म करते हैं ।५। इसलिये जो मूढ़बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियोंको हठसे रोककर इन्द्रियोंके भोगोंको मनसे चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है ।६। और हे अर्जुन ! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों-से कर्मयोगका आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है ।७। इसलिये तूं शास्त्रविधिसे नियत किये हुए स्वधर्म-रूप कर्मको कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीरनिर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ।८।

हे अर्जुन ! बन्धनके भयसे भी कर्मोंका त्याग करना योग्य नहीं है; क्योंकि यज्ञ अर्थात् विष्णुके निमित्त किये हुए कर्मके सिवाय, अन्य कर्ममें लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मोंद्वारा बंधता है, इसलिये हे अर्जुन ! आसक्तिसे रहित हुआ उस परमेश्वरके निमित्त कर्मका भली प्रकार आचरण कर ।९। कर्म न करनेसे तूं पापको भी प्राप्त होगा; क्योंकि प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजा-को रचकर कहा कि, इस यज्ञद्वारा तुमलोग वृद्धि-

को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित
कामनाओंके देनेवाला होवे ।१०। तथा तुमलोग
इस यज्ञद्वारा देवताओंकी उन्नति करो और वे
देवतालोग तुमलोगोंकी उन्नति करें, इस प्रकार
आपसमें कर्तव्य समझकर उन्नति करते हुए परम
कल्याणको प्राप्त होओगे ।११। तथा यज्ञद्वारा
बढ़ाये हुए देवतालोग तुम्हारे लिये बिना मांगे ही
प्रिय भोगोंको देंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगोंको
जो पुरुष इनके लिये बिना दिये ही भोगता है वह
निश्चय चोर है ।१२। कारण कि यज्ञसे शेष बचे
हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे छूटते
हैं और जो पापीलोग अपने शरीरपोषणके लिये
ही पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं ।१३।
क्योंकि संपूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं और
अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है और वृष्टि यज्ञसे
होती है और वह यज्ञ कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला
है ।१४। तथा उस कर्मको तूं वेदसे उत्पन्न हुआ
जान और वेद अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ
है, इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही
यज्ञमें प्रतिष्ठित है ।१५। हे पार्थ ! जो पुरुष इस

लोकमें इस प्रकार चलाये हुए सृष्टिचक्रके अनुसार नहीं बर्तता है अर्थात् शास्त्र-अनुसार कर्मोंको नहीं करता है, वह इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाला पाप-आयु पुरुष व्यर्थ ही जीता है ।१६।

परंतु जो मनुष्य आत्माहीमें प्रीतिवाला और आत्माहीमें तृप्त तथा आत्मामें ही संतुष्ट होवे, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है ।१७। क्योंकि इस संसारमें उस पुरुषका किये जानेसे भी कोई प्रयोजन नहीं है और न किये जानेसे भी कोई प्रयोजन नहीं है तथा इसका संपूर्ण भूतोंमें कुछ भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, तो भी उसके द्वारा केवल लोक-हितार्थ कर्म किये जाते हैं ।१८। इससे तूँ अनासक्त हुआ, निरन्तर कर्तव्यकर्मका अच्छी प्रकार आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्माको प्राप्त होता है । १९ । इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, इसलिये तथा लोक-संग्रहको देखता हुआ भी तूं कर्म करनेको ही योग्य है ।२०। क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है अन्य पुरुष भी उस-उसके ही अनुसार बर्तते हैं,

वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी
उसके अनुसार बर्तते हैं* ।२१। इसलिये हे अर्जुन!
यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है
तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त
नहीं है, तो भी मैं कर्ममें ही बर्तता हूं ।२२। क्योंकि
यदि मैं सावधान हुआ कदाचित् कर्ममें न बर्तूं तो
हे अर्जुन! सब प्रकारसे मनुष्य मेरे बर्तावके अनुसार
बर्तते हैं अर्थात् बर्तने लग जायं ।२३। तथा यदि
मैं कर्म न करूं तो यह सब लोक भ्रष्ट हो जायं और
मैं वर्णसंकरका करनेवाला होऊं तथा इस सारी
प्रजाको हनन करूं अर्थात् मारनेवाला बनूं ।२४।
इसलिये हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन
जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान्
भी लोकशिक्षाको चाहता हुआ कर्म करे ।२५।

ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि कर्मोंमें आसक्ति-
वाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें
अश्रद्धा उत्पन्न न करे, किंतु स्वयं परमात्माके
स्वरूपमें स्थित हुआ और सब कर्मोंको अच्छी प्रकार

* यहाँ क्रियामें एक वचन है, परंतु लोक शब्द समुदायवाचक
होनेसे भाषामें बहुवचनकी क्रिया लिखी गयी है।

करता हुआ उनसे भी वैसे ही करावे। २६। हे अर्जुन ! वास्तवमें संपूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये हुए हैं तो भी अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष, मैं कर्ता हूं ऐसे मान लेता है।२७। परंतु हे महाबाहो ! गुणविभाग* और कर्मविभाग-के† तत्त्वको‡ जाननेवाला ज्ञानी पुरुष संपूर्ण गुण गुणोंमें बर्तते हैं ऐसे मानकर नहीं आसक्त होता है।२८। और प्रकृतिके गुणोंसे मोहित हुए पुरुष गुण और कर्मोंमें आसक्त होते ह। उन अच्छी प्रकार न समझनेवाले मूर्खोंको अच्छी प्रकार जानने-वाला ज्ञानी पुरुष चलायमान न करे।२९। इसलिये हे अर्जुन! तूं ध्याननिष्ठ चित्तसे संपूर्ण कर्मोंको मुझमें समर्पण करके, आशारहित और ममतारहित होकर संतापरहित हुआ युद्ध कर।३०। हे अर्जुन! जो कोई भी मनुष्य दोषबुद्धिसे रहित और श्रद्धा-

*† त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पांच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और शब्दादि पांच विषय इन सबके समुदायका नाम 'गुणविभाग' है और इनकी पर-स्परकी चेष्टाओंका नाम 'कर्मविभाग' है।

‡ उपरोक्त 'गुणविभाग' और 'कर्मविभाग' से आत्माको पृथक् अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्त्व जानना है।

से युक्त हुए सदा ही मेरे इस मतके अनुसार बर्तते हैं, वे पुरुष संपूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं ।३१। और जो दोषदृष्टिवाले मूर्खलोग इस मेरे मतके अनुसार नहीं बर्तते हैं, उन संपूर्ण ज्ञानोंमें मोहित चित्तवालोंको तूं कल्याणसे भ्रष्ट हुए ही जान ।३२। क्योंकि सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावसे परवश हुए कर्म करते हैं, ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा ।३३। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि इन्द्रिय इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् सभी इन्द्रियोंके भोगोंमें स्थित जो राग और द्वेष हैं, उन दोनोंके वशमें नहीं होवे; क्योंकि इसके वे दोनों ही कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं ।३४। इसलिये उन दोनोंको जीतकर सावधान हुआ स्वधर्मका आचरण करे, क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है, अपने धर्ममें मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है ।३५।

इसपर अर्जुनने पूछा कि हे कृष्ण ! फिर यह

पुरुष बलात्कारसे लगाये हुएके सदृश न चाहता हुआ भी किससे प्रेरा हुआ पापका आचरण करता है ।३६।

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह ही महाअशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला और बड़ा पापी है, इस विषयमें इसको ही तूं वैरी जान ।३७। जैसे धुएंसे अग्नि और मलसे दर्पण ढका जाता है तथा जैसे जेरसे गर्भ ढका हुआ है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है ।३८। और हे अर्जुन! इस अग्निसदृश न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियों-के नित्य वैरीसे ज्ञान ढका हुआ है ।३९। इन्द्रियां, मन और बुद्धि इस कामके वासस्थान कहे जाते हैं और यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा ही ज्ञानको आच्छादित करके इस जीवात्माको मोहित करता है ।४०। इसलिये हे अर्जुन! तूं पहिले इन्द्रियोंको वशमें करके ज्ञान और विज्ञानके नाश करनेवाले इस काम पापीको निश्चयपूर्वक मार ।४१। और यदि तूं समझे कि इन्द्रियोंको रोक-

कर कामरूप वैरीको मारनेकी मेरी शक्ति नहीं है, तो तेरी यह भूल है, क्योंकि इस शरीरसे तो इन्द्रियोंको परे (श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म) कहते हैं, और इन्द्रियोंसे परे मन है और मनसे परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है ।४२। इस प्रकार बुद्धिसे परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके, हे महाबाहो ! अपनी शक्तिको समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मार ।४३।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "कर्मयोग" नामक तीसरा अध्याय ।।३।।

चौथा अध्याय

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! मैंने इस अविनाशी योगको कल्पके आदिमें सूर्यके प्रति कहा था और सूर्यने अपने पुत्र मनुके प्रति कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुके प्रति कहा ।१। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त हुए इस

योगको राजर्षियोंने जाना, परंतु हे अर्जुन ! वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लोप (प्रायः) हो गया था ।२। वह ही यह पुरातन योग अब मैंने तेरे लिये वर्णन किया है, क्योंकि तूं मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये तथा यह योग बहुत उत्तम और रहस्य अर्थात् अति मर्मका विषय है ।३। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके वचन सुनकर अर्जुनने पूछा, हे भगवन् ! आपका जन्म तो आधुनिक अर्थात् अब हुआ है और सूर्यका जन्म बहुत पुराना है, इसलिये इस योगको कल्पके आदिमें आपने कहा था, यह मैं कैसे जानूं ?।४। इसपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं, परंतु हे परंतप ! उन सबको तूं नहीं जानता है और मैं जानता हूं ।५। मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है, मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूं ।६। हे भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूपको

रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं ।७। क्योंकि साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये युग-युगमें प्रकट होता हूं ।८। इसलिये हे अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे* जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता है, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है ।९।

हे अर्जुन! पहिले भी राग, भय और क्रोधसे रहित अनन्य भावसे मेरेमें स्थितिवाले मेरे शरण हुए बहुत-से पुरुष, ज्ञानरूप तपसे पवित्र हुए मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं ।१०। क्योंकि हे अर्जुन! जो मेरेको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूं, इस रहस्यको जानकर ही बुद्धिमान्

---

* सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज, अविनाशी और सर्वभूतोंके परम गति तथा परम आश्रय हैं, वे केवल धर्मको स्थापन करने और संसारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी योग-मायासे सगुणरूप होकर प्रकट होते हैं। इसलिये परमेश्वरके समान सुहृद्, प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है, ऐसा समझकर जो पुरुष परमेश्वरका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ आशक्ति-रहित संसारमें वर्तता है, वही उनको तत्त्वसे जानता है ।

मनुष्यगण सब प्रकारसे मेरे मार्गके अनुसार बर्तते हैं ।११। जो मेरेको तत्त्वसे नहीं जानते हैं, वे पुरुष इस मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहते हुए देवताओंको पूजते हैं और उनके कर्मोंसे उत्पन्न हुई सिद्धि भी शीघ्र ही होती है; परंतु उनको मेरी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये तूं मेरेको ही सब प्रकारसे भज ।१२।

हे अर्जुन ! गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरेद्वारा रचे गये हैं, उनके कर्ताको भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तूं अकर्ता ही जान । १३ । क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है इसलिये मेरेको कर्म लिपायमान नहीं करते, इस प्रकार जो मेरेको तत्त्वसे जानता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बंधता है । १४ । तथा पहिले होनेवाले मुमुक्षु पुरुषोंद्वारा भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किया गया है, इससे तूं भी पूर्वजोंद्वारा सदासे किये हुए कर्मको ही कर ।१५। परंतु कर्म क्या है और अकर्म क्या है ? ऐसे इस विषयमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हैं; इसलिये मैं, वह कर्म अर्थात् कर्मोंका तत्त्व तेरे लिये अच्छी प्रकार कहूंगा, कि

जिसको जानकर तूं अशुभ अर्थात् संसारबन्धनसे छूट जायगा। १६। कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये तथा निषिद्ध कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्मकी गति गहन है।१७। जो पुरुष कर्ममें अर्थात् अहंकाररहित की हुई सम्पूर्ण चेष्टाओंमें, अकर्म अर्थात् वास्तवमें उनका न होनापना देखे और जो पुरुष अकर्ममें अर्थात् अज्ञानी पुरुषद्वारा किये हुए संपूर्ण क्रियाओंके त्यागमें भी, कर्मको अर्थात् त्यागरूप क्रियाको देखे, वह पुरुष मनुष्योंमें बुद्धिमान् है और वह योगी संपूर्ण कर्मोंका करनेवाला है। १८।

हे अर्जुन! जिसके संपूर्ण कार्य कामना और संकल्पसे रहित हैं, ऐसे उस ज्ञानरूप अग्निद्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।१९। जो पुरुष सांसारिक आश्रयसे रहित सदा परमानन्द परमात्मामें तृप्त है, वह कर्मोंके फल और संग अर्थात् कर्तृत्व-अभिमानको त्यागकर कर्ममें अच्छी प्रकार बर्तता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है।२०। जीत लिया है अन्तःकरण और

शरीर जिसने तथा त्याग दी है संपूर्ण भोगोंकी सामग्री जिसने ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीर-सम्बन्धी कर्मको करता हुआ भी पापको नहीं प्राप्त होता है।२१। अपने-आप जो कुछ आ प्राप्त हो उसमें ही संतुष्ट रहनेवाला और हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे अतीत हुआ तथा मत्सरता अर्थात् ईर्ष्यासे रहित सिद्धि और असिद्धिमें समत्वभाववाला पुरुष, कर्मोंको करके भी नहीं बंधता है।२२। क्योंकि आसक्तिसे रहित ज्ञानमें स्थित हुए चित्तवाले यज्ञके लिये आचरण करते हुए मुक्त पुरुषके सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।२३।

उन यज्ञके लिये आचरण करनेवाले पुरुषोंमें-से कोई तो इस भावसे यज्ञ करते हैं कि अर्पण अर्थात् स्रुवादिक भी ब्रह्म है और हवि अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म ही है, इसलिये ब्रह्मरूप कर्ममें समाधिस्थ हुए उस पुरुषद्वारा जो प्राप्त होने योग्य है वह भी ब्रह्म ही है।२४। और दूसरे योगीजन देवताओंके पूजनरूप यज्ञको ही अच्छी प्रकार उपासते हैं

अर्थात् करते हैं और दूसरे ज्ञानीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें यज्ञके द्वारा ही यज्ञको हवन करते हैं* ।२५। अन्य योगीजन श्रोत्रादिक सब इन्द्रियोंको संयम अर्थात् स्वाधीनतारूप अग्निमें हवन करते हैं, अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर अपने वशमें कर लेते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादिक विषयोंको इन्द्रियरूप अग्निमें हवन करते हैं अर्थात् रागद्वेषरहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण करते हुए भी भस्मरूप करते हैं ।२६। दूसरे योगीजन संपूर्ण इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको तथा प्राणोंके व्यापारको ज्ञानसे प्रकाशित हुई, परमात्मामें स्थितिरूप योगाग्निमें हवन करते हैं† ।२७। दूसरे कई पुरुष ईश्वर-अर्पण-बुद्धिसे लोकसेवामें द्रव्य लगानेवाले हैं, वैसे ही कई पुरुष स्वधर्म-पालनरूप तप यज्ञको करनेवाले हैं और कई अष्टाङ्गयोगरूप यज्ञको करनेवाले हैं और दूसरे अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों

---

* परब्रह्म परमात्मामें ज्ञानद्वारा एकीभावसे स्थित होना ही ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञके द्वारा यज्ञको हवन करना है ।

† सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवाय अन्य किसीका भी न चिन्तन करना ही उन सबका हवन करना है ।

से युक्त यत्नशील पुरुष भगवान्‌के नामका जप तथा भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका अध्ययनरूप ज्ञान-यज्ञके करनेवाले हैं।२८। दूसरे योगीजन अपान-वायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य योगीजन प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणायामके परायण होते हैं।२९। दूसरे नियमित आहार* करनेवाले योगीजन प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन करते हैं, इस प्रकार यज्ञोंद्वारा नाश हो गया है पाप जिनका ऐसे यह सब ही पुरुष यज्ञोंको जाननेवाले हैं।३०। हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञोंके परिणामरूप ज्ञानामृतको भोगनेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं और यज्ञ-रहित पुरुषको यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा।३१। ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तार किये गये हैं, उन सबको शरीर, मन और इन्द्रियोंकी क्रियाद्वारा ही उत्पन्न होनेवाले जान, इस प्रकार तत्त्वसे जानकर निष्कामकर्मयोगद्वारा संसार बंधन-

* गीता अध्याय ६ श्लोक १७ में देखना चाहिये।

से मुक्त हो जायगा ।३२।

हे अर्जुन! सांसारिक वस्तुओंसे सिद्ध होने वाले यज्ञसे ज्ञानरूप यज्ञ सब प्रकार श्रेष्ठ है, क्योंकि हे पार्थ! सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञानमें शेष होते हैं, अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है ।३३। इसलिये तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे भली प्रकार दण्डवत्-प्रणाम तथा सेवा और निष्कपटभावसे किये हुए प्रश्नद्वारा उस ज्ञानको जान, वे मर्मको जानने वाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे ।३४ कि जिसको जानकर तूं फिर इस प्रकार मोहको प्राप्त नहीं होगा और हे अर्जुन! जिस ज्ञानके द्वारा सर्वव्यापी अनन्त चेतनरूप हुआ अपने अन्तर्गत* समष्टि बुद्धिके आधार संपूर्ण भूतोंको देखेगा और उसके उपरान्त मेरेमें अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूपमें एकीभाव हुआ सच्चिदानन्दमय ही देखेगा ।३५। यदि तूं सब पापियोंसे भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह संपूर्ण पापोंको अच्छी प्रकार तर जायगा । ३६

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये ।

† गीता अध्याय ६ श्लोक ३० में देखना चाहिये ।

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धनको भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि संपूर्ण कर्मोंको भस्ममय कर देता है ।३७। इसलिये इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है, उस ज्ञानको कितनेक कालसे अपने-आप समत्वबुद्धिरूप योगके द्वारा अच्छी प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष आत्मामें अनुभव करता है ।३८। हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है, ज्ञानको प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्-प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।३९। हे अर्जुन ! भगवत्-विषयको न जाननेवाला तथा श्रद्धारहित और संशययुक्त पुरुष परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है, उनमें भी संशययुक्त पुरुषके लिये तो न सुख है और न यह लोक है, न परलोक है, अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिये भ्रष्ट हो जाते हैं ।४०। हे धनंजय ! समत्वबुद्धिरूप योगद्वारा भगवत्-अर्पण कर दिये हैं संपूर्ण कर्म जिसने और ज्ञानद्वारा नष्ट हो गये हैं सब संशय जिसके, ऐसे परमात्मपरायण पुरुषको कर्म नहीं बांधते हैं ।४१।

इससे हे भरतवंशी अर्जुन ! तूं समत्व-बुद्धिरूप योग में स्थित हो और अज्ञानसे उत्पन्न हुए हृदयमें स्थित इस अपने संशयको ज्ञानरूप तलवारद्वारा छेदन करके युद्धके लिये खड़ा हो ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "ज्ञानकर्मसंन्यासयोग" नामक चौथा अध्याय ।।४।।

पांचवां अध्याय

उसके उपरान्त अर्जुनने पूछा, हे कृष्ण ! आप कर्मोंके संन्यासकी और फिर निष्कामकर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं, इसलिये इन दोनोंमें एक जो निश्चय किया हुआ कल्याणकारक होवे, उसको मेरे लिये कहिये । १ । इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! कर्मोंका संन्यास (अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग) और निष्काम-कर्मयोग (अर्थात् समत्व-बुद्धिसे भगवत्-अर्थ कर्मोंका करना) यह दोनों ही परम कल्याणके करने-वाले हैं, परंतु उन दोनोंमें भी कर्मोंके संन्याससे

निष्कामकर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है ।२। इसलिये हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकांक्षा करता है, वह निष्काम-कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित हुआ पुरुष सुखपूर्वक संसाररूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है ।३। हे अर्जुन ! ऊपर कहे हुए संन्यास और निष्कामकर्मयोगको मूर्खलोग अलग-अलग फलवाले कहते हैं न कि पण्डितजन; क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी अच्छी प्रकार स्थित हुआ पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्मा-को प्राप्त होता है ।४। ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परम-धाम प्राप्त किया जाता है, निष्कामकर्मयोगियों-द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है, इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और निष्कामकर्मयोगको फल-रूपसे एक देखता है, वह ही यथार्थ देखता है ।५। परंतु हे अर्जुन ! निष्कामकर्मयोगके बिना, संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूपको मनन करने-वाला निष्कामकर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र

ही प्राप्त हो जाता है ।६।

वशमें किया हुआ है शरीर जिसके ऐसे जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरणवाला एवं संपू प्राणियोंके आत्मरूप परमात्मामें एकीभाव हुअ निष्कामकर्मयोगी कर्म करता हुआ भी, लिपायमा नहीं होता ।७। हे अर्जुन ! तत्त्वको जाननेवाल सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्प करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुअ गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुअ बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुअ तथा आंखोंको खोलता और मींचता हुआ भी स इन्द्रियां अपने-अपने अर्थोंमें बर्त रही हैं, इस प्रका समझता हुआ, निःसंदेह ऐसे माने, कि मैं कुछ भ नहीं करता हूं ।८,९। परंतु हे अर्जुन ! देहाभिमानियो द्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है, क्योंकि जो पुरुष सब कर्मोंक परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागक कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्ते सदृश पापसे लिपायमान नहीं होता ।१०। इसलि निष्कामकर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय

मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्याग-कर अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं ।११। इसीसे निष्कामकर्मयोगी कर्मोंके फलको परमेश्वर-के अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकामी पुरुष फलमें आसक्त हुआ कामनाके द्वारा बंधता है, इसलिये निष्कामकर्म-योग उत्तम है । १२ ।

हे अर्जुन ! वशमें है अन्तःकरण जिसके ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष तो निःसन्देह न करता हुआ और न करवाता हुआ नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर अर्थात् इन्द्रियां इन्द्रियोंके अर्थोंमें बर्तती हैं ऐसे मानता हुआ आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है ।१३। परमे-श्वर भी भूत-प्राणियोंके न कर्तापनको और न कर्मों-को तथा न कर्मोंके फलके संयोगको वास्तवमें रचता है, किंतु परमात्माके सकाशसे प्रकृति ही बर्तती है अर्थात् गुण ही गुणोंमें बर्त रहे हैं ।१४। सर्वव्यापी परमात्मा, न किसीके पापकर्मको और न किसीके शुभकर्मको भी ग्रहण करता है, किंतु मायाके द्वारा

ज्ञान ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं ।१५। परंतु जिनका वह अन्तःकरणका अज्ञान आत्मज्ञानद्वारा नाश हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशता है (अर्थात् परमात्माके स्वरूपको साक्षात् कराता है) ।१६। हे अर्जुन! तद्रूप है बुद्धि जिनकी तथा तद्रूप है मन जिनका और उस सच्चिदानन्द-घन परमात्मामें ही है निरन्तर एकीभावसे स्थिति जिनकी, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पाप-रहित हुए अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं ।१७। ऐसे वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समभावसे देखनेवाले* ही होते हैं ।१८। इसलिये जिनका मन समत्वभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही संपूर्ण संसार जीत लिया गया (अर्थात् वे जीते हुए ही संसारसे मुक्त हैं), क्योंकि सच्चिदानन्दघन पर-मात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन

* इसका विस्तार गीता अ० ६ श्लोक ३२ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

परमात्मामें ही स्थित हैं।१९। जो पुरुष प्रियको अर्थात् जिसको लोग प्रिय समझते हैं उसको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रियको अर्थात् जिसको लोग अप्रिय समझते हैं उसको प्राप्त होकर उद्वेगवान् न हो, ऐसा स्थिरबुद्धि, संशयरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें एकीभावसे नित्य स्थित है।२०। बाहरके विषयोंमें अर्थात् सांसारिक भोगोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष अन्तःकरणमें जो भगवत्-ध्यानजनित आनन्द है उसको प्राप्त होता है और वह पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मारूप योगमें एकीभावसे स्थित हुआ अक्षय आनन्दको अनुभव करता है।२१। जो यह इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं, इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान्, विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।२२। जो मनुष्य शरीरके नाश होनेसे पहले ही काम और क्रोधसे उत्पन्न हुए वेगको सहन करनेमें समर्थ है अर्थात् काम-क्रोधको

जिसने सदाके लिये जीत लिया है वह मनुष्य इस लोकमें योगी है और वही सुखी है ।२३। जो पुरुष निश्चय करके अन्तर-आत्मामें ही सुखवाला है और आत्मामें ही आरामवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, ऐसा वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभाव हुआ सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है ।२४। नाश हो गये हैं सब पाप जिनके तथा ज्ञान करके निवृत्त हो गया है संशय जिनका और संपूर्ण भूतप्राणियोंके हितमें है रति जिनकी, एकाग्र हुआ है भगवान्के ध्यानमें चित्त जिनका ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त परब्रह्मको प्राप्त होते हैं। २५। काम-क्रोधसे रहित जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त है ।२६। हे अर्जुन! बाहरके विषय-भोगोंको न चिन्तन करता हुआ बाहर ही त्यागकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटीके बीचमें स्थित करके तथा नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपान वायुको सम करके ।२७। जीती हुई हैं इन्द्रियां, मन और बुद्धि

जिसकी, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि* इच्छा, भय और क्रोधसे रहित है, वह सदा मुक्त ही है।२८। और हे अर्जुन! मेरा भक्त मेरेको यज्ञ और तपों-का भोगनेवाला और संपूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा संपूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है और सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण शान्त ब्रह्मके सिवाय उसकी दृष्टिमें और कुछ भी नहीं रहता, केवल वासुदेव-ही-वासुदेव रह जाता है।२९।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारुपी उपनिषद एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र-विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "कर्मसंन्यासयोग" नामक पांचवां अध्याय ॥५॥

छठा अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन! जो पुरुष कर्मके फलको न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है वह संन्यासी और योगी है और केवल अग्निको त्यागनेवाला संन्यासी,

*परमेश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला।

योगी नहीं है, तथा केवल क्रियाओंको त्यागनेवाला भी संन्यासी, योगी नहीं है।१। इसलिये हे अर्जुन! जिसको संन्यास* ऐसा कहते हैं उसीको तूं योग† जान, क्योंकि संकल्पोंको न त्यागनेवाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।२। समत्व-बुद्धिरूप योगमें आरूढ़ होनेकी इच्छावाले मननशील पुरुषके लिये योगकी प्राप्तिमें निष्कामभावसे कर्म करना ही हेतु कहा है और योगारूढ़ हो जानेपर उस योगारूढ़ पुरुषके लिये सर्वसंकल्पोंका अभाव ही कल्याणमें हेतु कहा है।३। जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें आसक्त होता है तथा न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।४।

यह योगारूढ़ता कल्याणमें हेतु कही है, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपने आत्माको अधोगतिमें न पहुंचावे, क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है अर्थात् और कोई

*-† गीता अ० ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका खुलासा अर्थ लिखा है।

दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है।५। उस जीवात्माका तो वह आप ही मित्र है, कि जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है और जिसके द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है उसका वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है।६। हे अर्जुन! सर्दी, गर्मी और सुख, दुःखादिकोंमें तथा मान और अपमानमें, जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियां अच्छी प्रकार शान्त हैं, अर्थात् विकाररहित हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा-वाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित है, अर्थात् उसके ज्ञानमें पर-मात्माके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।७। ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है अन्तःकरण जिसका तथा विकार-रहित है स्थिति जिसकी और अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इन्द्रियां जिसकी तथा समान है मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण जिसके, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्-की प्राप्तिवाला है, ऐसे कहा जाता है।८। जो पुरुष सुहृद्*, मित्र, वैरी, उदासीन†, मध्यस्थ‡ द्वेषी

* स्वार्थरहित सबका हित करनेवाला। † पक्षपातरहित।
‡ दोनों ओरकी भलाई चाहनेवाला।

और बन्धुगणोंमें तथा धर्मात्माओंमें और पापियों-में भी, समान भाववाला है वह अति श्रेष्ठ है ।९। इसलिये उचित है कि जिसका मन और इन्द्रियों-सहित शरीर जीता हुआ है, ऐसा वासनारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थानमें स्थित हुआ निरन्तर आत्माको परमेश्वरके ध्यानमें लगावे ।१०।

शुद्ध भूमिमें कुशा, मृगछाला और वस्त्र हैं उपरोपरि जिसके ऐसे अपने आसनको न अति ऊंचा और न अति नीचा स्थिर स्थापन करके ।११। और उस आसनपर बैठकर तथा मनको एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें किया हुआ अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे ।१२। उसकी विधि इस प्रकार है कि काया, सिर और ग्रीवाको समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपने नासिकाके अग्रभागको देखकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ ।१३। और ब्रह्म-चर्यके व्रतमें स्थित रहता हुआ भयरहित तथा अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरणवाला और साव-धान होकर मनको वशमें करके, मेरेमें लगे हुए

चित्तवाला और मेरे परायण हुआ स्थित होवे । १४ । इस प्रकार आत्माको निरन्तर परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरेमें स्थितिरूप परमानन्द पराकाष्ठावाली शान्तिको प्राप्त होता है । १५ । परंतु हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खानेवालेका सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खानेवालेका तथा न अति शयन करनेके स्वभाववालेका और न अत्यन्त जागनेवालेका ही सिद्ध होता है । १६ । यह दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करनेवालेका तथा कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य शयन करने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है । १७ ।

इस प्रकार योगके अभ्याससे अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त, जिस कालमें परमात्मामें ही भली प्रकार स्थित हो जाता है उस कालमें संपूर्ण कामनाओंसे स्पृहारहित हुआ पुरुष योगयुक्त ऐसा कहा जाता है । १८ । जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता है, वैसी ही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए योगीके जीते हुए चित्तकी कही गयी है । १९ । हे अर्जुन !

जिस अवस्थामें, योगके अभ्याससे निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्थामें परमेश्वरके ध्यानसे शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्माको साक्षात् करता हुआ, सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही संतुष्ट होता है । २० । तथा इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित हुआ यह योगी भगवत्स्वरूपसे नहीं चलायमान होता है । २१ । और परमेश्वरकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्-प्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता है । २२ । जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये, वह योग न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है । २३ । इसलिये मनुष्यको चाहिये कि संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली संपूर्ण कामनाओंको निःशेषतासे अर्थात् वासना

और आसक्तिसहित त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सब ओरसे ही अच्छी प्रकार वशमें करके ।२४। क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्रा होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके, परमात्माके सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे ।२५। परंतु जिसका मन वशमें नहीं हुआ हो, उसको चाहिये कि यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस कारणसे सांसारिक पदार्थोंमें विचरता है उस-उससे रोककर बारंबार परमात्मामें ही निरोध करे ।२६। क्योंकि जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है और जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको अति उत्तम आनन्द प्राप्त होता है ।२७। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुख-पूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्द-को अनुभव करता है ।२८। हे अर्जुन! सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला

योगी आत्माको संपूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक देखता है, और संपूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है, वैसे ही वह पुरुष संपूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है। २९। जो पुरुष संपूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और संपूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत* देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूं और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मेरेमें एकीभावसे स्थित है। ३०। इस प्रकार जो पुरुष एकीभावमें स्थित हुआ संपूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी मेरेमें ही बर्तता है, क्योंकि उसके अनुभवमें मेरे सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। ३१। हे अर्जुन! जो योगी अपनी सादृश्यतासे† संपूर्ण भूतोंमें सम

---

* गीता अध्याय ९ श्लोक ६ देखना चाहिये।

† जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और गुदादिके साथ

देखता है, और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है। ३२।

इस प्रकार भगवान्‌के वाक्योंको सुनकर अर्जुन बोला, हे मधुसूदन! जो यह ध्यानयोग आपने समत्वभावसे कहा है, इसको मैं मनके चञ्चल होनेसे बहुत कालतक ठहरनेवाली स्थितिको नहीं देखता हूं। ३३। क्योंकि हे कृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल और प्रमथन स्वभाववाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है, इसलिये इसका वशमें करना मैं वायुकी भांति अति दुष्कर मानता हूं। ३४। इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे महाबाहो! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है, परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! अभ्यास* अर्थात् स्थितिके लिये बारम्बार यत्न करनेसे और वैराग्यसे वशमें होता है, इसलिये

ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिकोंका-सा बर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापना समान होनेसे सुख और दुःखको समान ही देखता है, वैसे ही सब भूतोंमें देखना "अपनी सादृश्यतासे" सम देखना है।

* गीता अ० १२ श्लोक ९ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

इसको अवश्य वशमें करना चाहिये। ३५। क्योंकि मनको वशमें न करनेवाले पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है अर्थात् प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मन-वाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधन करनेसे प्राप्त होना सहज है, यह मेरा मत है। ३६।

इसपर अर्जुन बोला, हे कृष्ण! योगसे चलायमान हो गया है मन जिसका; ऐसा शिथिल यत्न-वाला श्रद्धायुक्त पुरुष योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्-साक्षात्कारताको न प्राप्त होकर किस गतिको प्राप्त होता है?। ३७। हे महाबाहो! क्या वह भगवत्प्राप्तिके मार्गमें मोहित हुआ आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादलकी भांति दोनों ओरसे अर्थात् भगवत्प्राप्ति और सांसारिक भोगोंसे भ्रष्ट हुआ नष्ट तो नहीं हो जाता है?। ३८। हे कृष्ण! मेरे इस संशयको संपूर्णतासे छेदन करनेके लिये आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवाय दूसरा इस संशयका छेदन करनेवाला मिलना संभव नहीं है। ३९।

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे पार्थ! उस पुरुषका, न तो इस लोकमें और

न परलोकमें ही नाश होता है, क्योंकि हे प्यारे ! कोई भी शुभकर्म करनेवाला अर्थात् भगवत्-अर्थ कर्म करनेवाला दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है । ४० । किन्तु वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके लोकोंको अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षोंतक वास करके शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है । ४१ । अथवा वैराग्य-वान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर, ज्ञानवान् योगियों-के ही कुलमें जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकारका जो यह जन्म है, सो संसारमें निःसन्देह अति दुर्लभ है । ४२ । वह पुरुष वहां उस पहिले शरीरमें साधन किये हुए बुद्धिके संयोगको अर्थात् समत्वबुद्धियोगके संस्कारोंको अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभावसे फिर अच्छी प्रकार भग-वत्प्राप्तिके निमित्त यत्न करता है । ४३ । वह* विषयोंके वशमें हुआ भी उस पहिलेके अभ्याससे ही निःसन्देह भगवत्‌की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समत्वबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें

* यहाँ "वह" शब्दसे श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पुरुष समझना चाहिये ।

कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको उल्लङ्घन कर जाता है। ४४। जब कि इस प्रकार मन्द प्रयत्न करनेवाला योगी भी परमगतिको प्राप्त हो जाता है, तब क्या कहना है कि अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ और अति प्रयत्नसे अभ्यास करनेवाला योगी सम्पूर्ण पापोंसे अच्छी प्रकार शुद्ध होकर, उस साधनके प्रभावसे परमगतिको प्राप्त होता है, अर्थात् परमात्माको प्राप्त होता है। ४५। क्योंकि योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है और शास्त्रके ज्ञानवालोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तूं योगी हो। ४६। हे प्यारे! संपूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मेरेमें लगे हुए अन्तरात्मासे मेरेको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है। ४७।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अजुनके संवादमें "आत्मसंयमयोग" नामक छठा अध्याय ॥६॥

सातवां अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे पार्थ ! तूं मेरेमें अनन्य प्रेमसे आसक्त हुए मनवाला और अनन्य भावसे मेरे परायण योगमें लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा, उसको सुन ।१। मैं तेरे लिये इस रहस्यसहित तत्त्वज्ञानको संपूर्णतासे कहूंगा कि जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है ।२। हजारों मनुष्योंमें कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरेको तत्त्वसे जानता है अर्थात् यथार्थ मर्मसे जानता है ।३। हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार भी ऐसे यह आठ प्रकारसे विभक्त हुई मेरी प्रकृति है ।४। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरीको मेरी जीवरूप परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान, कि जिससे यह संपूर्ण जगत् धारण किया

जाता है । ५ । हे अर्जुन ! तूं ऐसा समझ, कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पत्तिवाले हैं और मैं संपूर्ण जगत्का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूं अर्थात् संपूर्ण जगत्का मूल कारण हूं । ६ । इसलिये हे धनंजय ! मेरेसे सिवाय किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, यह संपूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुंथा हुआ है ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जलमें मैं रस हूं तथा चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूं और संपूर्ण वेदोंमें ओंकार हूं तथा आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूं । ८ । पृथ्वीमें पवित्र* गन्ध और अग्निमें तेज हूं और संपूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूं अर्थात् जिससे वे जीते हैं, वह मैं हूं और तपस्वियोंमें तप हूं । ९ । हे अर्जुन ! तूं सम्पूर्ण भूतोंका सनातन कारण मेरेको ही जान, मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूं । १० । हे भरतश्रेष्ठ ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूं और सब

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे इस प्रसङ्गमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है ।

भूतोंमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूं। ११। और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होने-वाले भाव हैं, उन सबको तूं मेरेसे ही होनेवाले हैं, ऐसा जान, परंतु वास्तवमें* उनमें मैं और वे मेरे-में नहीं हैं। १२।

गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकारके भावोंसे अर्थात् राग-द्वेषादि विकारोंसे और संपूर्ण विषयोंसे यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिये इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको तत्त्वसे नहीं जानता।१३। क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो पुरुष मेरेको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं। १४। ऐसा सुगम उपाय होनेपर भी मायाद्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभावको धारण किये हुए तथा मनुष्योंमें नीच और दूषित कर्म करनेवाले मूढ़लोग तो मेरेको नहीं भजते हैं। १५। हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४-५ में देखना चाहिये।

उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी*, आर्त्त† जिज्ञासु‡ और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मेरेको भजते हैं।१६। उनमें भी नित्य मेरेमें एकीभावसे स्थित हुआ अनन्य प्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मेरेको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूं और वह ज्ञानी मेरेको अत्यन्त प्रिय है।१७। यद्यपि ये सब ही उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजनके लिये समय लगानेवाले होनेसे उत्तम हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिरबुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मेरेमें ही अच्छी प्रकार स्थित है।१८। जो बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं, इस प्रकार मेरेको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।१९।

हे अर्जुन! जो विषयासक्त पुरुष हैं वे तो अपने स्वभावसे प्रेरे हुए तथा उन-उन भोगोंकी कामना-

---

*सांसारिक पदार्थोंके लिये भजनेवाला। †सङ्कट-निवारणके लिये भजनेवाला। ‡मेरेको यथार्थरूपसे जाननेकी इच्छासे भजनेवाला।

द्वारा ज्ञानसे भ्रष्ट हुए उस-उस नियमको धारण-करके अर्थात् जिस देवताकी पूजाके लिये जो-जो नियम लोकमें प्रसिद्ध है उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। २०। जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्त-की मैं उस ही देवताके प्रति श्रद्धाको स्थिर करता हूं। २१। वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त हुआ, उस देवताके पूजनकी चेष्टा करता है और उस देवतासे मेरेद्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको निःसन्देह प्राप्त होता है। २२। परंतु उन अल्पबुद्धि-वालोंका वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें शेषमें वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं। २३।

ऐसा होनेपर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते, इसका कारण यह है कि बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे अविनाशी परमभावको अर्थात् अजन्मा, अवि-नाशी आ भी अपनी मायासे प्रकट होता हूं, ऐसे

प्रभावको तत्त्वसे न जानते हुए मन, इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी भांति जन्मकर, व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं। २४। अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूं, इसलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्म-रहित, अविनाशी परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानता है अर्थात् मेरेको जन्मने-मरनेवाला समझता है। २५। हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमान-में स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूं, परंतु मेरेको कोई भी श्रद्धा, भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता। २६। क्योंकि हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानताको प्राप्त हो रहे हैं। २७। परंतु निष्काम भावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त हुए और दृढ़ निश्चयवाले पुरुष मेरेको सब प्रकारसे भजते हैं। २८। जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्मको तथा संपूर्ण अध्यात्मको और संपूर्ण कर्म-

को जानते हैं। २९। जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित सबका आत्मरूप मेरेको जानते हैं अर्थात् जैसे भाप, बादल, धूम, पानी और बर्फ यह सभी जलस्वरूप हैं, वैसे ही अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेवस्वरूप हैं, ऐसे जो जानते हैं, वे युक्तचित्तवाले पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं। ३०।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें
"ज्ञानविज्ञानयोग" नामक सातवां अध्याय ॥७॥

आठवां अध्याय

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको न समझकर अर्जुन बोला, हे पुरुषोत्तम ! जिसका आपने वर्णन किया वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है और अधिभूत नामसे क्या कहा गया है ? अधिदैव नामसे क्या कहा जाता है ? ।१। हे मधुसूदन ! यहां अधियज्ञ कौन है ? और वह इस शरीरमें कैसे है ? और युक्त चित्तवाले पुरुषोंद्वारा

अन्त समयमें आप किस प्रकार जाननेमें आते हो? ।२। इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! परम अक्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा अध्यात्म नामसे कहा जाता है तथा भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला शास्त्रविहित यज्ञ, दान और होम आदिके निमित्त जो द्रव्यादिकोंका त्याग है, वह कर्म नामसे कहा गया है ।३। उत्पत्ति, विनाश धर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं और हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीरमें मैं वासुदेव ही विष्णुरूपसे अधियज्ञ हूं ।४। और जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५। कारण कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है, उस-उसको ही प्राप्त

* जिसको शास्त्रोंमें "सूत्रात्मा", "हिरण्यगर्भ", "प्रजापति", "ब्रह्मा" इत्यादि नामोंसे कहा है ।

होता है, परंतु सदा उस ही भावको चिन्तन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भावका चिन्तन करता है, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण होता है।६। इसलिये हे अर्जुन ! तूं सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर, इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन, बुद्धिसे युक्त हुआ, निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा।७।

और हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त, अन्य तरफ न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाशरूप, दिव्य पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही प्राप्त होता है।८। इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता*, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश, नित्य चेतन प्रकाशरूप, अविद्यासे अतिपरे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माको स्मरण करता है।९। वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापन

* अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मके अनुसार शासन करनेवाला।

करके फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परमपुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है।१०। हे अर्जुन! वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको ओंकार नामसे कहते हैं और आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं तथा जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा।११। हे अर्जुन! सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे हटा-कर तथा मनको हृदयमें स्थिर करके और अपने प्राणको मस्तकमें स्थापन करके योगधारणामें स्थित हुआ।१२। जो पुरुष, ॐ ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्व-रूप मेरेको चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।१३। हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेमें अनन्यचित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूं अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूं।१४। वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्माजन मेरेको प्राप्त होकर

दुःखके स्थानरूप क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते ।१५। क्योंकि हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकसे लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाववाले अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछा संसारमें आना पड़े ऐसे हैं, परंतु हे कुन्तीपुत्र ! मेरेको प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है; क्योंकि मैं कालातीत हूं और यह सब ब्रह्मादिकोंके लोक काल करके अवधिवाले होनेसे अनित्य हैं ।१६।

हे अर्जुन ! ब्रह्माका जो एक दिन है, उसको हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाला और रात्रिको भी हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते हैं, अर्थात् काल करके अवधिवाला होनेसे ब्रह्मलोकको भी अनित्य जानते हैं, वे योगी-जन कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं ।१७। इसलिये वे यह भी जानते हैं कि संपूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लय होते हैं ।१८। वह ही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर, प्रकृतिके वशमें हुआ रात्रिके

प्रवेशकालमें लय होता है और दिनके प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है, हे अर्जुन ! इस प्रकार ब्रह्माके एक सौ वर्ष पूर्ण होनेसे अपने लोकसहित ब्रह्मा भी शान्त हो जाता है।१९। परंतु उस अव्यक्तसे भी अतिपरे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा, सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नहीं नष्ट होता है।२०। जो वह अव्यक्त, अक्षर ऐसे कहा गया है, उस ही अक्षर नामक अव्यक्तभावको परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं वह मेरा परम धाम है।२१। और हे पार्थ ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है* वह सनातन अव्यक्त परमपुरुष अनन्य भक्तिसे† प्राप्त होने योग्य है।२२।

और हे अर्जुन! जिस कालमें‡ शरीर त्याग-

---

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४ देखना चाहिये।

† गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में इसका विस्तार देखना चाहिये।

‡ यहां काल शब्दसे मार्ग समझना चाहिये; क्योंकि आगे श्लोकोंमें भगवान्ने इसका नाम "सृति", "गति" ऐसा कहा है।

कर गये हुए योगीजन पीछा न आनेवाली गतिको और पीछा आनेवाली गतिको भी प्राप्त होते हैं, उस कालको अर्थात् मार्गको कहूँगा ।२३। उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है और दिनका अभिमानी देवता है तथा शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है, और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता अर्थात् परमेश्वर-की उपासनासे परमेश्वरको परोक्षभावसे जाननेवाले योगीजन उपरोक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गये हुए ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।२४। जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है और रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है, और दक्षिणायन-के छः महीनोंका अभिमानी देवता है; उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकाम कर्मयोगी उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर पीछा आता है ।२५। क्योंकि जगत्के यह दो प्रकार-के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं, इनमें एकके द्वारा गया

हुआ* पीछा न आनेवाली परमगतिको प्राप्त होता है और दूसरोंद्वारा गया हुआ† पीछा आता है अर्थात् जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है ।२६। हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गोंको तत्त्वसे जानता हुआ कोई भी योगी मोहित नहीं होता है अर्थात् फिर वह निष्कामभावसे ही साधन करता है, कामनाओंमें नहीं फंसता । इस कारण हे अर्जुन! तूं सब कालमें समत्वबुद्धिरूप योगसे युक्त हो अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो ।२७। क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्यको तत्त्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिकोंके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उस सबको निःसन्देह उल्लङ्घन कर जाता है और सनातन परमपदको प्राप्त होता है ।२८।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें
"अक्षरब्रह्मयोग" नामक आठवाँ अध्याय ।।८।।

---

* अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २४ के अनुसार अर्चिमार्गसे गया हुआ योगी ।

† अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २५ के अनुसार धूममार्गसे गया हुआ सकाम कर्मयोगी ।

नवाँ अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन ! तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय ज्ञानको रहस्यके सहित कहूँगा, कि जिसको जानकर तूं दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा ।१। यह ज्ञान सब विद्याओंका राजा तथा सब गोपनीयोंका भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला और धर्मयुक्त है, साधन करनेको बड़ा सुगम और अविनाशी है ।२। हे परंतप ! इस तत्त्वज्ञानरूप धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मेरेको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते हैं ।३। हे अर्जुन ! मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बर्फके सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं इसलिये वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूं ।४। और वे सब भूत मेरेमें स्थित नहीं हैं, किंतु मेरी योगमाया और प्रभावको देख, कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है ।५। क्योंकि जैसे आकाशसे उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरनेवाला

महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पत्तिवाले होनेसे संपूर्ण भूत मेरेमें स्थित हैं, ऐसे जान ।६।

हे अर्जुन! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लय होते हैं और कल्पके आदिमें उनको मैं फिर रचता हूं ।७। कैसे कि अपनी त्रिगुणमयी मायाको अङ्गीकार करके स्वभावके वशसे परतन्त्र हुए इस संपूर्ण भूतसमुदायको बारम्बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूं ।८। हे अर्जुन! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश* स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बांधते हैं ।९। हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे यह मेरी माया चराचरसहित सर्व जगत्को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतुसे ही यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है ।१०।

ऐसा होनेपर भी संपूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप मेरे परमभावको† न जाननेवाले मूढ़लोग मनुष्यका

---

* जिसके संपूर्ण कार्य कर्तृत्वभावके विना अपने-आप सत्तामात्रसे ही होते हैं, उसका नाम उदासीनके सदृश है ।

† गीता अध्याय ७ श्लोक २४ में देखना चाहिये ।

शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धार-के लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुएको साधारण मनुष्य मानते हैं ।११। जो कि वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञानवाले अज्ञानीजन राक्षसोंके और असुरोंके जैसे मोहित करनेवाले तामसी स्वभावको* ही धारण किये हुए हैं । १२ । परंतु हे कुन्तीपुत्र ! दैवी प्रकृतिके† आश्रित हुए जो महात्माजन हैं, वे तो मेरेको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त हुए निरन्तर भजते हैं ।१३। वे दृढ़ निश्चयवाले भक्त-जन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मेरेको बारम्बार प्रणाम करते हुए, सदा मेरे ध्यानमें युक्त हुए, अनन्य भक्तिसे मुझे उपासते हैं ।१४। उनमें कोई तो मुझ विराट् स्वरूप परमात्माको ज्ञानयज्ञके द्वारा पूजन करते हुए एकत्वभावसे अर्थात् जो कुछ है, सब वासुदेव ही है, इस भावसे उपासते हैं और

* जिसको आसुरी संपदाके नामसे विस्तारपूर्वक भगवान्ने गीता अध्याय १६ श्लोक ४ तथा श्लोक ७ से २१ तक कहा है । † इसका विस्तारपूर्वक वर्णन गीता अध्याय १६ श्लोक १, २, ३ में देखना चाहिये ।

दूसरे पृथक्त्वभावसे अर्थात् स्वामी-सेवकभावसे और कोई-कोई बहुत प्रकारसे भी उपासते हैं। १५।

क्योंकि क्रतु अर्थात् श्रौतकर्म मैं हूं, यज्ञ अर्थात् पञ्चमहायज्ञादिक स्मार्त कर्म मैं हूं, स्वधा अर्थात् पितरोंके निमित्त दिया जानेवाला अन्न मैं हूं, ओषधि अर्थात् सब वनस्पतियां मैं हूं, एवं मन्त्र मैं हूं, घृत मैं हूं, अग्नि मैं हूं और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं।१६। हे अर्जुन! मैं ही इस सम्पूर्ण जगत्का धाता अर्थात् धारण-पोषण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला तथा पिता, माता और पितामह हूं और जानने योग्य* पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं।१७। हे अर्जुन! प्राप्त होने योग्य तथा भरण-पोषण करनेवाला सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान और शरण लेनेयोग्य तथा प्रति-उपकार न चाहकर हित करनेवाला और उत्पत्ति, प्रलयरूप तथा सबका आधार, निधान† और अविनाशी कारण भी मैं ही

* गीता अध्याय १३ श्लोक १२ से १७ तकमें देखना चाहिये।

† प्रलयकालमें संपूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम "निधान" है।

हूं ।१८। मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूं तथा वर्षाको आकर्षण करता हूं और वर्षाता हूं और हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत् भी सब कुछ मैं ही हूं ।१९।

परंतु जो तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्मोंको करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले एवं पापोंसे पवित्र हुए पुरुष* मेरेको यज्ञोंके द्वारा पूज-कर स्वर्गकी प्राप्तिको चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलरूप इन्द्रलोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोगोंको भोगते हैं ।२०। वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर, पुण्य क्षीण होनेपर, मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं, इस प्रकार स्वर्गके साधन-रूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मके शरण हुए और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बारम्बार जाने-आनेको प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग-में जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं ।२१। जो अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम-

* यहाँ स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक देवऋणरूप पापसे पवित्र होना समझना चाहिये ।

भावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मेरेमें स्थिति-वाले पुरुषोंका योगक्षेम* मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूं ।२२। हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धासे युक्त हुए जो सकामी भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मेरेको ही पूजते हैं; किंतु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है अर्थात् अज्ञानपूर्वक है ।२३। क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों-का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं, परंतु वे मुझ अधियज्ञस्वरूप परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते हैं, इसीसे गिरते हैं, अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं ।२४। कारण, यह नियम है, कि देवताओंको पूजने-वाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरेको ही प्राप्त होते हैं, इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता † ।२५।

हे अर्जुन ! मेरे पूजनमें यह सुगमता भी है कि पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे अर्पण करता है, उस शुद्ध-बुद्धि, निष्काम-

---

* भगवत्के स्वरूपकी प्राप्तिका नाम "योग" है और भगवत्-प्राप्तिके निमित्त किये हुए साधनकी रक्षाका नाम "क्षेम" है ।

† गीता अध्याय ८ श्लोक १६ में देखना चाहिये ।

प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादिक मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूं ।२६। इसलिये हे अर्जुन! तूं जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ।२७। इस प्रकार कर्मोंको मेरे अर्पण करनेरूप संन्यासयोगसे युक्त हुए मनवाला तूं शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धन-से मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त हुआ मेरेको ही प्राप्त होवेगा ।२८। यद्यपि मैं सब भूतोंमें सम-भावसे व्यापक हूं, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मेरेको प्रेमसे भजते हैं, वे मेरेमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूं* ।२९। मेरी भक्तिका और भी प्रभाव सुन, यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ मेरेको निरन्तर भजता है, वह साधु ही माननेयोग्य है,

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनों-द्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्त:करणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है।

क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है ।३०। इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परमशान्तिको प्राप्त होता है, हे अर्जुन! तूं निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ।३१। क्योंकि हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पापयोनिवाले भी जो कोई होवें वे भी मेरे शरण होकर तो परमगतिको ही प्राप्त होते हैं ।३२। फिर क्या कहना है कि, पुण्यशील ब्राह्मणजन तथा राजर्षि भक्तजन परमगतिको प्राप्त होते हैं, इसलिये तूं सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर अर्थात् मनुष्य-शरीर बड़ा दुर्लभ है; परंतु है नाशवान् और सुखरहित, इसलिये कालका भरोसा न करके तथा अज्ञानसे सुखरूप भासनेवाले विषयभोगोंमें न फँसकर निरन्तर मेरा ही भजन कर ।३३। केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यप्रेमसे नित्य, निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको श्रद्धा-प्रेमसहित, निष्काम-

भावसे नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठन-पाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मुझ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट, कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके, अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान्, विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न, सबके आश्रयरूप वासुदेवको विनयभावपूर्वक, भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर, इस प्रकार मेरे शरण हुआ तूं आत्माको मेरेमें एकीभाव करके मेरेको ही प्राप्त होवेगा ।३४।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "राजविद्याराजगुह्ययोग" नामक नवां अध्याय ।।९।।

दसवां अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले, हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचन श्रवण कर जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवाले-

के लिये हितकी इच्छासे कहूँगा । १ । हे अर्जुन ! मेरी उत्पत्तिको अर्थात् विभूतिसहित लीलासे प्रकट होनेको न देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी आदि कारण हूं ।२। जो मेरेको अजन्मा अर्थात् वास्तवमें जन्मरहित और अनादि* तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष संपूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । ३ । हे अर्जुन ! निश्चय करनेकी शक्ति एवं तत्त्वज्ञान और अमूढ़ता, क्षमा, सत्य तथा इन्द्रियोंका वशमें करना और मनका निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति और प्रलय एवं भय और अभय भी । ४ । तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप†, दान कीर्ति और अपकीर्ति ऐसे यह प्राणियोंके नाना प्रकारके भाव मेरेसे ही होते हैं ।५। हे अर्जुन ! सात तो महर्षिजन और चार उनसे भी पूर्वमें होनेवाले

* अनादि उसे कहते हैं कि जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे ।

† स्वधर्मके आचरणसे इन्द्रियादिको तपाकर शुद्ध करनेका नाम तप है ।

सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु, यह मेरेमें भाववाले सब-के-सब मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं, कि जिनकी संसारमें यह सम्पूर्ण प्रजा है। ६। जो पुरुष इस मेरी परमैश्वर्यरूप विभूतिको और योगशक्तिको तत्त्वसे जानता है*, वह पुरुष निश्चल ध्यानयोगद्वारा मेरेमें ही एकीभावसे स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ७।

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मेरेसे ही सब जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार तत्त्वसे समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त हुए बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं। ८। वे निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले और मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले† भक्तजन सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते

* जो कुछ दृश्यमात्र संसार है, सो सब भगवान्‌की माया है और एक वासुदेव भगवान् ही सर्वत्र परिपूर्ण हैं, यह जानना ही तत्त्वसे जानना है।

† मुझ वासुदेवके लिये ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, उनका नाम है "मद्‌गतप्राणाः"।

हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। ९। उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको, मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूं, कि जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं। १०। हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही, मैं स्वयं उनके अन्तःकरणमें एकीभावसे स्थित हुआ, अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकद्वारा नष्ट करता हूं।

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला, हे भगवन्! आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषि-जन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवोंका भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं, वैसे ही देवर्षि नारद तथा असित और देवलऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयम् आप भी मेरे प्रति कहते हैं।१२,१३। हे केशव! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्तको मैं सत्य मानता हूं, हे भगवन्! आपके लीलामय* स्वरूपको न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं। १४।

* गीता अध्याय ४ श्लोक ६ में इसका विस्तार देखना चाहिये।

हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले! हे भूतोंके ईश्वर! हे देवोंके देव! हे जगत्‌के स्वामी! हे पुरुषोत्तम! आप स्वयम् ही अपनेसे आपको जानते हैं।१५। इसलिये हे भगवन्! आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियोंको सम्पूर्णतासे कहनेके लिये योग्य हैं, कि जिन विभूतियोंके द्वारा इन सब लोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं।१६। हे योगेश्वर! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूं और हे भगवन्! आप किन-किन भावोंमें मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं।१७। हे जनार्दन! अपनी योगशक्तिको और परमैश्वर्यरूप विभूतिको फिर भी विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आपके अमृतमय वचनोंको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है अर्थात् सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है।१८।

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! अब मैं तेरे लिये अपनी दिव्य विभूतियोंको प्रधानतासे कहूंगा, क्योंकि मेरे विस्तारका अन्त नहीं है।१९। हे अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूं तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूं।२०।

हे अर्जुन! मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु अर्थात् वामन अवतार और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूं तथा मैं उन्चास वायु देवताओंमें मरीचिनामक वायुदेवता और नक्षत्रोंमें नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूं।२१। मैं वेदोंमें सामवेद हूं, देवोंमें इन्द्र हूं और इन्द्रियोंमें मन हूं, भूतप्राणियोंमें चेतनता अर्थात् ज्ञानशक्ति हूं।२२। मैं एकादश रुद्रोंमें शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूं और मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूं तथा शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूं।२३। पुरोहितोंमें मुख्य अर्थात् देवताओंका पुरोहित बृहस्पति मेरेको जान तथा हे पार्थ! मैं सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक और जलाशयोंमें समुद्र हूं।२४। हे अर्जुन! मैं महर्षियोंमें भृगु और वचनोंमें एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूं तथा सब प्रकारके यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पहाड़ हूं।२५। सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष और देवऋषियोंमें नारदमुनि तथा गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिलमुनि हूं।२६। हे अर्जुन! तूं घोड़ोंमें अमृतसे उत्पन्न होनेवाला उच्चैःश्रवा-नामक घोड़ा और हाथियोंमें ऐरावतनामक हाथी

तथा मनुष्योंमें राजा मेरेको ही जान ।२७। हे अर्जुन ! मैं शस्त्रोंमें वज्र और गौओंमें कामधेनु हूं और शास्त्रोक्तरीतिसे संतानकी उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूं, सर्पोंमें सर्पराज वासुकि हूं ।२८। मैं नागोंमें* शेषनाग और जलचरोंमें उनका अधिपति वरुण देवता हूं और पितरोंमें अर्यमानामक पित्रेश्वर तथा शासन करनेवालोंमें यमराज मैं हूं । २९। हे अर्जुन ! मैं दैत्योंमें प्रह्लाद और गिनती करनेवालोंमें समय† हूं तथा पशुओंमें मृगराज सिंह और पक्षियोंमें गरुड़ मैं हूं ।३०।

मैं पवित्र करनेवालोंमें वायु और शस्त्रधारियोंमें राम हूं तथा मछलियोंमें मगरमच्छ हूं और नदियोंमें श्रीभागीरथी गङ्गा हूं ।३१। हे अर्जुन ! सृष्टियोंका आदि, अन्त और मध्य भी मैं ही हूं तथा मैं विद्याओंमें अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या एवं परस्परमें विवाद करनेवालोंमें तत्त्वनिर्णयके लिये किये जानेवाला वाद हूं ।३२। मैं अक्षरोंमें अकार और समासोंमें द्वन्द्वनामक समास हूं तथा अक्षय काल अर्थात्

* नाग और सर्प यह दो प्रकारकी सर्पोंकी ही जाति हैं ।

† क्षण, घड़ी, दिन, पक्ष, मास आदिमें जो समय है सो मैं हूं ।

कालका भी महाकाल और विराट्स्वरूप सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूं ।३३। हे अर्जुन! मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और आगे होनेवालों-की उत्पत्तिका कारण हूं तथा स्त्रियोंमें कीर्ति*, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं ।३४। तथा मैं गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें बृहत्साम और छन्दोंमें गायत्री छन्द तथा महीनोंमें मार्गशीर्षका महीना और ऋतुओंमें वसन्त ऋतु मैं हूं ।३५। हे अर्जुन! मैं छल करनेवालोंमें जुआ और प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव हूं तथा मैं जीतनेवालोंका विजय हूं और निश्चय करनेवालोंका निश्चय एवं सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक भाव हूं ।३६। और वृष्णिवंशियोंमें† वासु-देव अर्थात् मैं स्वयम् तुम्हारा सखा और पाण्डवों-में धनंजय अर्थात् तूं एवं मुनियोंमें वेदव्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं ।३७। और दमन करनेवालोंका दण्ड अर्थात् दमन करनेकी

* कीर्ति आदि यह सात देवताओंकी स्त्रियां और स्त्रीवाचक नामवाले गुण भी प्रसिद्ध हैं, इसलिये दोनों प्रकारसे ही भगवान्की विभूतियां हैं।

† यादवोंके ही अन्तर्गत एक वृष्णिवंश भी था।

शक्ति हूं, जीतनेकी इच्छावालोंकी नीति हूं और गोपनीयोंमें अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य भावोंमें मौन हूं तथा ज्ञानवानोंका तत्त्वज्ञान मैं ही हूं।३८। और हे अर्जुन! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूं, क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, कि जो मेरेसे रहित होवे, इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है।३९। हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, यह तो मैंने अपनी विभूतियोंका विस्तार तेरे लिये एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे कहा है।४०। इसलिये हे अर्जुन! जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तूं मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई जान।४१। अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगमायाके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूं, इसलिये मेरेको ही तत्त्वसे जानना चाहिये।४२।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें
"विभूतियोग" नामक दसवां अध्याय ॥१०॥

ग्यारहवां अध्याय

इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर अर्जुन बोला—हे भगवन् ! मेरेपर अनुग्रह करनेके लिये, परम गोपनीय, अध्यात्मविषयक वचन अर्थात् उपदेश आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है । १ । क्योंकि हे कमलनेत्र ! मैंने भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय आपसे विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना है । २ । हे परमेश्वर ! आप अपनेको जैसा कहते हो यह ठीक ऐसा ही है, परंतु हे पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजयुक्त रूपको प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं । ३ । इसलिये हे प्रभो !* मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है, ऐसा यदि मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! आप अपने अविनाशीस्वरूपका मुझे दर्शन कराइये । ४ ।

इस प्रकार अर्जुनके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे पार्थ ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकारके और नाना वर्ण तथा आकृतिवाले

---

* उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामीरूपसे शासन करनेवाला होनेसे भगवान्‌का नाम "प्रभु" है ।

अलौकिक रूपोंको देख। ५। हे भरतवंशी अर्जुन! मेरेमें आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको और आठ वसुओंको, एकादश रुद्रोंको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको और उन्चास मरुद्गणोंको देख तथा और भी बहुत-से पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपोंको देख। ६। हे गुडाकेश!* अब इस मेरे शरीर-में एक जगह स्थित हुए चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख। ७। परंतु मेरेको इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेको निःसंदेह समर्थ नहीं है, इसीसे मैं तेरे लिये दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूं, उससे तूं मेरे प्रभावको और योगशक्तिको देख। ८।

संजय बोला, हे राजन्! महायोगेश्वर और सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान्‌ने इस प्रकार कहकर उसके उपरान्त अर्जुनके लिये परम ऐश्वर्य-युक्त दिव्य स्वरूप दिखाया। ९। उस अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले एवं बहुत-से दिव्य भूषणोंसे युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए।१०। तथा दिव्य

---

* निद्राको जीतनेवाला होनेसे अर्जुनका नाम "गुडाकेश" हुआ था।

माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए और दिव्य गन्धका अनुलेपन किये हुए एवं सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त, सीमारहित, विराट्स्वरूप, परमदेव परमेश्वरको अर्जुनने देखा। ११। हे राजन्! आकाशमें हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होवे, वह भी उस विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश कदाचित् ही होवे। १२। ऐसे आश्चर्यमय रूपको देखते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस कालमें अनेक प्रकारसे विभक्त हुए अर्थात् पृथक्-पृथक् हुए, संपूर्ण जगत्को उस देवोंके देव श्रीकृष्ण भगवान्के शरीरमें एक जगह स्थित देखा। १३। उसके अनन्तर वह आश्चर्यसे युक्त हुआ, हर्षित रोमोंवाला अर्जुन विश्वरूप परमात्माको श्रद्धा-भक्तिसहित सिरसे प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोला। १४।

हे देव! आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक भूतोंके समुदायोंको और कमलके आसनपर बैठे हुए ब्रह्माको तथा महादेवको और सम्पूर्ण ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूं। १५। हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्! आपको अनेक हाथ, पेट, मुख

और नेत्रोंसे युक्त तथा सब ओरसे अनन्त रूपों-वाला देखता हूं, हे विश्वरूप! आपके न अन्तको देखता हूं तथा न मध्यको और न आदिको ही देखता हूं।१६। हे विष्णो! आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओरसे प्रकाश-मान तेजका पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त, देखनेमें अति गहन और अप्रमेय-स्वरूप सब ओरसे देखता हूं।१७। इसलिये हे भगवन्! आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं और आप ही इस जगत्-के परम आश्रय हैं तथा आप ही अनादि धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं ऐसा मेरा मत है।१८। हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अन्त और मध्यसे रहित तथा अनन्त सामर्थ्य-से युक्त और अनन्त हाथोंवाला तथा चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाला और प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाला तथा अपने तेजसे इस जगत्‌को तपायमान करता हुआ देखता हूं।१९। हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी-के बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएं एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक

और भयंकर रूपको देखकर तीनों लोक अति व्यथा-
को प्राप्त हो रहे हैं । २० । हे गोविन्द ! वे सब
देवताओंके समूह आपमें ही प्रवेश करते हैं और कई
एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम
और गुणोंका उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और
सिद्धोंके समुदाय 'कल्याण होवे' ऐसा कहकर उत्तम-
उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं । २१ ।
हे परमेश्वर ! जो एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य
तथा आठ वसु और साध्यगण, विश्वेदेव तथा
अश्विनीकुमार और मरुद्गण और पितरोंका समु-
दाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणोंके
समुदाय हैं, वे सब ही विस्मित हुए आपको देखते
हैं । २२ । हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख और
नेत्रोंवाले तथा बहुत हाथ, जंघा और पैरोंवाले
और बहुत उदरोंवाले तथा बहुत-सी विकराल
जाड़ोंवाले महान् रूपको देखकर सब लोक व्याकुल
हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूं । २३ ।
क्योंकि हे विष्णो ! आकाशके साथ स्पर्श किये हुए
देदीप्यमान अनेक रूपोंसे युक्त तथा फैलाये हुए
मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको

देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला मैं धीरज और शान्तिको नहीं प्राप्त होता हूं। २४।

हे भगवन्! आपके विकराल जाड़ोंवाले और प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित मुखोंको देखकर दिशाओंको नहीं जानता हूं और सुखको भी नहीं प्राप्त होता हूं, इसलिये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होवें। २५। मैं देखता हूं कि वे सब ही धृतराष्ट्रके पुत्र राजाओंके समुदायसहित, आपमें प्रवेश करते हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्षके भी प्रधान योद्धाओंके सहित सबके सब। २६। वेगयुक्त हुए आपके विकराल जाड़ोंवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरोंसहित आपके दांतोंके बीचमें लगे हुए दीखते हैं। २७। हे विश्वमूर्ते! जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह समुद्रके ही सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं वैसे ही वे शूरवीर मनुष्योंके समुदाय भी आपके प्रज्वलित हुए मुखोंमें प्रवेश करते हैं। २८। अथवा जैसे पतंग मोहके वश होकर नष्ट होनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें अति वेगसे युक्त हुए प्रवेश करते हैं,

वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें अति वेगसे युक्त हुए प्रवेश करते हैं ।२९। और आप उन सम्पूर्ण लोकोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा ग्रसन करते हुए, सब ओरसे चाट रहे हैं । हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत्को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान करता है ।३०। हे भगवन्! कृपा करके मेरे प्रति कहिये कि आप उग्ररूपवाले कौन हैं ? हे देवोंमें श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइये, आदिस्वरूप आपको मैं तत्त्वसे जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानता । ३१ ।

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन ! मैं लोकोंको नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं, इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूं, इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित हुए योधालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायगा ।३२। इससे तूं खड़ा हो और यशको प्राप्त कर तथा शत्रुओंको जीतकर धनधान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग और यह

सब शूरवीर पहिलेसे ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं; हे सव्यसाचिन् !* तूं तो केवल निमित्तमात्र ही हो जा ।३३। तथा इन द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योधाओंको तूं मार और भय मत कर, निःसन्देह तूं युद्धमें वैरियोंको जीतेगा, इसलिये युद्ध कर ।३४।

इसके उपरान्त संजय बोला कि, हे राजन् ! केशवभगवान्के इस वचनको सुनकर, मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुए, कांपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी भयभीत हुआ प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणीसे बोला । ३५ । कि हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अति हर्षित होता है और अनुरागको भी प्राप्त होता है तथा भयभीत हुए राक्षसलोग दिशाओंमें भागते हैं और सब सिद्धगणोंके समुदाय नमस्कार करते हैं । ३६ । हे महात्मन् ! ब्रह्माके भी आदिकर्ता और सबसे बड़े

* बायें हाथसे भी बाण चलानेका अभ्यास होनेसे अर्जुनका नाम "सव्यसाची" हुआ था ।

आपके लिये वे कैसे नमस्कार नहीं करें; क्योंकि हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं । ३७ । हे प्रभो ! आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्के परम आश्रय और जाननेवाले तथा जानने योग्य और परमधाम हैं । हे अनन्तरूप ! आपसे यह सब जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है । ३८ । हे हरे ! आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजाके स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्माके भी पिता हैं, आपके लिये हजारों बार नमस्कार, नमस्कार होवे, आपके लिये फिर भी बारम्बार नमस्कार, नमस्कार होवे । ३९ । हे अनन्त सामर्थ्य वाले ! आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार होवे, हे सर्वात्मन् ! आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार होवे, क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं । ४० ।

हे परमेश्वर ! सखा ऐसे मानकर, आपके इस प्रभावको न जानते हुए मेरे द्वारा प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इस प्रकार

जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है ।४१। और हे अच्युत! जो आप हंसीके लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादिकोंमें, अकेले अथवा उन सखाओंके सामने भी अपमानित किये गये हैं, वह सब अपराध अप्रमेय-स्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा कराता हूं। ४२। हे विश्वेश्वर ! आप इस चराचर जगत्‌के पिता और गुरुसे भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं, हे अतिशय प्रभाववाले ! तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होवे ? । ४३ । इससे हे प्रभो ! मैं शरीरको अच्छी प्रकार चरणोंमें रखके और प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वरको प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूं, हे देव ! पिता जैसे पुत्रके और सखा जैसे सखाके और पति जैसे प्रिय स्त्रीके, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करनेके लिये योग्य हैं। ४४। हे विश्वमूर्ते ! मैं पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूपको देखकर हर्षित हो रहा हूं और मेरा मन भयसे अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिये हे देव ! आप उस अपने चतुर्भुजरूपको ही मेरे लिये दिखाइये, हे देवेश ! हे जगन्निवास !

प्रसन्न होइये। ४५। हे विष्णो ! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूं, इसलिये हे विश्वस्वरूप ! हे सहस्रबाहो ! आप उस ही चतुर्भुज रूपसे युक्त होइये। ४६।

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन ! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमारहित विराट्रूप तेरेको दिखाया है जो कि तेरे सिवाय दूसरेसे पहिले नहीं देखा गया। ४७। हे अर्जुन ! मनुष्यलोकमें इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं, न वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे तथा न दानसे और न क्रियाओंसे और न उग्र तपोंसे ही तेरे सिवाय दूसरेसे देखा जानेको शक्य हूं। ४८। इस प्रकारके मेरे इस विकराल रूपको देखकर तेरेको व्याकुलता न होवे और मूढ़भाव भी न होवे और भयरहित, प्रीतियुक्त मनवाला तूं उस ही मेरे इस शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसहित चतुर्भुजरूपको फिर देख। ४९। उसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन् ! वासुदेवभगवान्ने अर्जुनके प्रति

इस प्रकार कहकर, फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज-रूपको दिखाया और फिर महात्मा कृष्णने सौम्य-मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुनको धीरज दिया। ५०।

उसके उपरान्त अर्जुन बोला, हे जनार्दन! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूपको देखकर अब मैं शान्तचित्त हुआ अपने स्वभावको प्राप्त हो गया हूं। ५१। इस प्रकार अर्जुनके वचनको सुनकर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्भुज-रूप देखनेको अति दुर्लभ है कि जिसको तुमने देखा है; क्योंकि देवता भी सदा इस रूपके दर्शन करने-की इच्छावाले हैं। ५२। हे अर्जुन! न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे इस प्रकार चतुर्भुजरूप-वाला मैं देखा जानेको शक्य हूँ कि जैसे मेरेको तुमने देखा है। ५३। परंतु हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य* भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुजरूप-वाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जानने-के लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूं। ५४। हे अर्जुन! जो

* अनन्य भक्तिका भाव अगले श्लोकमें विस्तारपूर्वक कहा है।

पुरुष केवल मेरे ही लिये, सब कुछ मेरा समझता हुआ, यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों-को करनेवाला है और मेरे परायण है अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर है तथा मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम, गुण, प्रभाव और रहस्यके श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान और पठन-पाठनका प्रेमसहित निष्काम-भावसे निरन्तर अभ्यास करनेवाला है और आसक्तिरहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थोंमें स्नेहरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है* ऐसा वह अनन्य भक्तिवाला पुरुष मेरेको ही प्राप्त होता है । ५५ ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "विश्व-रूपदर्शनयोग" नामक ग्यारहवां अध्याय ।।११।।

बारहवां अध्याय

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन

* सर्वत्र भगवत्-बुद्धि हो जानेसे उस पुरुषका अति अपराध करनेवालेमें भी वैरभाव नहीं होता है, फिर औरोंमें तो कहना ही क्या है ।

बोला, हे मनमोहन ! जो अनन्यप्रेमी भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकारसे, निरन्तर आपके भजन, ध्यानमें लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वरको अति श्रेष्ठभावसे उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानन्दघन, निराकारको ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकारके भक्तोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं? ।१। इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन ! मेरेमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यानमें लगे हुए* जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मेरेको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं ।२। और जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको अच्छी प्रकार वशमें करके मन, बुद्धिसे परे सर्वव्यापी अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत हुए और सबमें समान

*अर्थात् गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में लिखे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए ।

भाववाले योगी भी मेरेको ही प्राप्त होते हैं ।३, ४। किंतु उन सच्चिदानन्दघन, निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियोंसे अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है अर्थात् जबतक शरीरमें अभिमान रहता है तबतक शुद्ध, सच्चिदानन्दघन, निराकार ब्रह्ममें स्थिति होनी कठिन है ।५। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन, सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके, मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही तैलधाराके सदृश अनन्य ध्यानयोग-से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं* ।६। हे अर्जुन! उन मेरेमें चित्तको लगानेवाले प्रेमी भक्तों-का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसमुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ ।७।

इसलिये हे अर्जुन! तूँ मेरेमें मनको लगा और मेरेमें ही बुद्धिको लगा, इसके उपरान्त तूं मेरेमें ही निवास करेगा अर्थात् मेरेको ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।८। यदि तूँ मनको मेरेमें

* इस श्लोकका विशेष भाव जाननेके लिये गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ देखना चाहिये ।

अचल स्थापन करनेके लिये समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन ! अभ्यासरूप* योगके द्वारा मेरेको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर । ९। यदि तूं ऊपर कहे हुए अभ्यासमें भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण† हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा ।१०। और यदि इसको भी करनेके लिये असमर्थ है, तो जीते हुए मनवाला और मेरी प्राप्तिरूप योगके शरण हुआ सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग‡ कर ।११। क्योंकि मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे परोक्षज्ञान§ श्रेष्ठ है और परोक्ष-

* भगवान्‌के नाम और गुणोंका श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वासके द्वारा जप और भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका पठन-पाठन इत्यादिक चेष्टाएं भगवत्प्राप्तिके लिये बारम्बार करनेका नाम "अभ्यास" है ।

† स्वार्थको त्यागकर तथा परमेश्वरको ही परम आश्रय और परम गति समझकर निष्काम प्रेमभावसे सतीशिरोमणि, पतिव्रता स्त्रीकी भांति मन, वाणी और शरीरद्वारा परमेश्वरके ही लिये यज्ञ, दान और तपादि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंके करनेका नाम "भगवत्-अर्थ कर्म करनेके परायण होना" है ।

‡ गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

§ सुननेसे और शास्त्र पठन करनेसे परमेश्वरके स्वरूपका जो अनुमान ज्ञान होता है, उसीका नाम "परोक्ष ज्ञान" है ।

ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग करना* श्रेष्ठ है और त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है । १२ ।

इस प्रकार शान्तिको प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित एवं अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है । १३ । तथा जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ, निरन्तर लाभ-हानिमें संतुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए मेरेमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मेरेमें अर्पण किये हुए मनबुद्धि-वाला मेरा भक्त मेरेको प्रिय है । १४ । जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयम् भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष†, भय और उद्वेगादिकोंसे

* केवल भगवत् अर्थ कर्म करनेवाले पुरुषका भगवत्में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवत्का चिन्तन भी बना रहता है, इसलिये ध्यानसे "कर्मफलका त्याग" श्रेष्ठ कहा है ।

† दूसरेकी उन्नतिको देखकर संताप होनेका नाम "अमर्ष" है ।

रहित है, वह भक्त मेरेको प्रिय है। १५। जो पुरुष आकांक्षासे रहित तथा बाहर-भीतरसे शुद्ध* और चतुर है अर्थात् जिस कामके लिये आया था, उसको पूरा कर चुका है, एवं पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है, वह सर्व आरम्भोंका त्यागी अर्थात् मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रारब्धसे होनेवाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्यागी मेरा भक्त मेरेको प्रिय है। १६। जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरेको प्रिय है। १७। जो पुरुष शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादिक द्वन्द्वोंमें सम है और सब संसारमें आसक्तिसे रहित है। १८। तथा जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला और मननशील है अर्थात् ईश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है एवं जिस किस प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें

* गीता अ० १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला भक्तिमान् पुरुष मेरेको प्रिय है।१९। और जो मेरे परायण हुए अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति एवं सबका आत्मरूप और सबसे परे, परमपूज्य समझ-कर विशुद्ध प्रेमसे मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर हुए श्रद्धायुक्त* पुरुष, इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत-को निष्कामभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मेरेको अतिशय प्रिय हैं। २०।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें
'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय ।।१२।।

तेरहवां अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले, हे अर्जुन! यह शरीर क्षेत्र† है ऐसा कहा जाता है

* वेद, शास्त्र, महात्मा और गुरुजनों तथा परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वासका नाम "श्रद्धा" है।

† जैसे खेतमें बोये हुए बीजोंका उनके अनुरूप फल समयपर प्रकट होता है, वैसे ही इसमें बोये हुए कर्मोंके संस्काररूप बीजोंका फल समयपर प्रकट होता है, इसलिये इसका नाम 'क्षेत्र' ऐसा कहा है।

और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं। १। और हे अर्जुन ! तूं सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मेरेको ही जान* और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका जो तत्त्वसे जानना है† वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। २। इसलिये वह क्षेत्र जो है और जैसा तथा जिन विकारोंवाला है और जिस कारणसे जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाववाला है, वह सब संक्षेपसे मेरेसे सुन। ३। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ऋषियोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है अर्थात् समझाया गया है और नाना प्रकारके वेदमन्त्रोंसे विभागपूर्वक कहा गया है तथा अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा भी वैसे ही कहा गया है। ४। हे अर्जुन ! वही मैं तेरे लिये कहता हूं कि पांच महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका सूक्ष्मभाव,

* गीता अध्याय १५ श्लोक ७ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।

† गीता अध्याय १३ श्लोक २३ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।

अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इन्द्रियां अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा। एक मन और पाँच इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। ५। तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और स्थूल देहका पिण्ड एवं चेतनता* और धृति† इस प्रकार यह क्षेत्र विकारोंके सहित‡ संक्षेपसे कहा गया। ६।

हे अर्जुन! श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, प्राणिमात्रको किसी प्रकार भी न सताना और क्षमाभाव तथा मन, वाणीकी सरलता, श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि§, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन और इन्द्रियों-

---

* शरीर और अन्तःकरणकी एक प्रकारकी चेतनशक्ति।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३-३४-३५ में देखना चाहिये।

‡ पांचवें श्लोकमें कहा हुआ तो क्षेत्रका स्वरूप समझना चाहिये और इस श्लोकमें कहे हुए इच्छादि क्षेत्रके विकार समझने चाहिये।

§ सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग, द्वेष और कपट

सहित शरीरका निग्रह । ७ । इस लोक और पर-लोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख-दोषोंका बारम्बार विचार करना । ८ । पुत्र, स्त्री, घर, धनादिमें आसक्तिका अभाव और ममताका न होना तथा प्रिय-अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलके प्राप्त होनेपर हर्ष-शोकादि विकारों-का न होना । ९ । मुझ परमेश्वरमें एकीभावसे स्थिति-रूप ध्यानयोगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति* तथा एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना । १० । तथा अध्यात्मज्ञानमें† नित्य स्थिति और

आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतर-की शुद्धि कही जाती है ।

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके, श्रद्धा और भावसहित, परम प्रेमसे भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना "अव्यभिचारिणी भक्ति" है ।

† जिस ज्ञानके द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाय उस ज्ञानका नाम "अध्यात्मज्ञान" है ।

तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान* है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान† है ऐसे कहा है। ११।

हे अर्जुन! जो जाननेके योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूंगा, वह आदिरहित, परम ब्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् कहा जाता है और न असत् ही कहा जाता है। १२। परंतु वह सब ओरसे हाथ-पैरवाला एवं सब ओरसे नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओरसे श्रोत्रवाला है, क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है‡।१३। और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित और गुणोंसे अतीत हुआ भी

* इस अध्यायके श्लोक ७ से लेकर यहाँतक जो साधन कहे हैं वे सब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें हेतु होनेसे "ज्ञान" नामसे कहे गये हैं।

† ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे विपरीत जो मान, दम्भ, हिंसा आदि हैं, वे अज्ञानकी वृद्धिमें हेतु होनेसे "अज्ञान" नामसे कहे गये हैं।

‡ आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्त करके स्थित है, वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है।

अपनी योगमायासे सबको धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है । १४ । तथा वह परमात्मा चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है* तथा अति समीपमें† और दूरमें‡ भी स्थित वही है ।१५। और वह विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें पृथक्-पृथक्के सदृश स्थित प्रतीत होता है§ तथा वह जानने योग्य परमात्मा, विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूपसे संहार करनेवाला तथा ब्रह्मारूपसे सबका उत्पन्न करनेवाला है । १६ । वह ब्रह्म ज्योतियोंका

---

* जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है ।

† वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होनेसे अत्यन्त समीप है ।

‡ श्रद्धारहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण बहुत दूर है ।

§ जैसे महाकाश विभागरहित स्थित हुआ भी घड़ोंमें पृथक्-पृथक्के सदृश प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एकरूपसे स्थित हुआ भी पृथक्-पृथक्की भांति प्रतीत होता है ।

भी ज्योति* एवं मायासे अति परे कहा जाता है तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जाननेके योग्य है एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला और सबके हृदयमें स्थित है। १७। हे अर्जुन ! इस प्रकार क्षेत्र† तथा ज्ञान‡ और जानने योग्य परमात्माका स्वरूप§ संक्षेपसे कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है। १८।

हे अर्जुन ! प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी मेरी माया और जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ, इन दोनोंको ही तूं अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारोंको तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए जान। १९। क्योंकि कार्य× और करणके÷ उत्पन्न करनेमें हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें अर्थात्

---

* गीता अध्याय १५ श्लोक १२ में देखना चाहिये। † श्लोक ५-६ में विकारसहित क्षेत्रका स्वरूप कहा है। ‡ श्लोक ७ से ११ तक ज्ञान अर्थात् ज्ञानका साधन कहा है। § श्लोक १२ से १७ तक ज्ञेयका स्वरूप कहा है। ×आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इनका नाम कार्य है। ÷बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा—इन १३ का नाम करण है।

भोगनेमें हेतु कहा जाता है। २०। परंतु प्रकृतिमें* स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी, बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें कारण है† । २१। वास्तवमें तो यह पुरुष इस देहमें स्थित हुआ भी पर अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ही है, केवल साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता एवं सबको धारण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीव-रूपसे भोक्ता तथा ब्रह्मादिकोंका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा, ऐसा कहा गया है। २२। इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो मनुष्य तत्त्वसे जानता है‡ वह सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी फिर नहीं

* प्रकृति शब्दका अर्थ गीता अध्याय ७ श्लोक १४ में कही हुई भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया समझना चाहिये। † सत्त्वगुणके संगसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके संगसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके संगसे पशु, पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है। ‡ दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत् मायाका कार्य होनेसे क्षणभङ्गुर, नाशवान्, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोधस्वरूप, सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही सनातन अंश है, इस

जन्मता है अर्थात् पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है।२३।
हे अर्जुन! उस परम पुरुष परमात्माको कितने ही
मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा
हृदयमें देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञानयोगके
द्वारा देखते हैं और अपर कितने ही निष्काम कर्म-
योगके‡ द्वारा देखते हैं।२४। परंतु इनसे दूसरे
अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं वे स्वयं इस प्रकार
न जानते हुए, दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले
पुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं अर्थात् उन
पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर हुए
साधन करते हैं और वे सुननेके परायण हुए पुरुष
भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते
हैं।२५। हे अर्जुन! यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर,
जङ्गम वस्तु उत्पन्न होती है, उस सम्पूर्णको तूं क्षेत्र

प्रकार समझकर सम्पूर्ण मायिक पदार्थोंके संगका सर्वथा त्याग करके परम पुरुष परमात्मामें ही एकीभावसे नित्य स्थित रहनेका नाम उनको "तत्त्वसे जानना" है।

* जिसका वर्णन गीता अध्याय ६ में श्लोक ११ से ३२ तक विस्तारपूर्वक किया है। †जिसका वर्णन गीता अध्याय २ में श्लोक ११ से ३० तक विस्तारपूर्वक किया है। ‡ जिसका वर्णन गीता अध्याय २ में श्लोक ४० से अध्याय-समाप्तिपर्यन्त विस्तारपूर्वक किया है।

और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न हुई जान अर्थात् प्रकृति और पुरुषके परस्परके सम्बन्धसे ही सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है, वास्तवमें तो सम्पूर्ण जगत् नाशवान् और क्षणभङ्गुर होनेसे अनित्य है । २६ ।

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें नाशरहित परमेश्वरको समभावसे स्थित देखता है, वही देखता है । २७ । क्योंकि वह पुरुष सबमें समभावसे स्थित हुए परमेश्वरको समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है अर्थात् शरीरका नाश होनेसे अपने आत्माका नाश नहीं मानता है, इससे वह परमगतिको प्राप्त होता है । २८ । और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिसे ही किये हुए देखता है अर्थात् इस बातको तत्त्वसे समझ लेता है कि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं तथा आत्माको अकर्ता देखता है, वही देखता है । २९ । और यह पुरुष जिस कालमें भूतोंके न्यारे-न्यारे भावको एक परमात्माके संकल्पके आधार स्थित देखता है तथा उस परमात्माके संकल्पसे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उस कालमें

सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है।३०। हे अर्जुन ! अनादि होनेसे और गुणातीत होनेसे यह अविनाशी परमात्मा, शरीरमें स्थित हुआ भी वास्तवमें न करता है और न लिपायमान होता है।३१। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता है, वैसे ही सर्वत्र देहमें स्थित हुआ भी आत्मा गुणातीत होनेके कारण देहके गुणोंसे लिपायमान नहीं होता है।३२। हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है अर्थात् नित्य बोधस्वरूप एक आत्माकी ही सत्तासे सम्पूर्ण जड़वर्ग प्रकाशित होता है।३३। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको* तथा विकारसहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको जो पुरुष ज्ञाननेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।३४।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग" नामक तेरहवाँ अध्याय ।।१३।।

*क्षेत्रको जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अधिकारी और अविनाशी जानना ही उनके "भेदको जानना" है।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

चौदहवां अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन! ज्ञानोंमें भी अति उत्तम परम ज्ञानको मैं फिर भी तेरे लिये कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन, इस संसारसे मुक्त होकर, परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं। १। हे अर्जुन! इस ज्ञानको आश्रय करके अर्थात् धारण करके मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए पुरुष सृष्टिके आदिमें पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलयकालमें भी व्याकुल नहीं होते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं। २। हे अर्जुन! मेरी महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतन-रूप बीजको स्थापन करता हूं, उस जड़-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है। ३। हे अर्जुन! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुण-मयी माया तो गर्भको धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूं। ४।

हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण

ऐसे यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं। ५। हे निष्पाप! उन तीनों गुणोंमें प्रकाश करनेवाला, निर्विकार सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण सुखकी आसक्तिसे और ज्ञानकी आसक्तिसे अर्थात् ज्ञानके अभिमानसे बांधता है। ६। हे अर्जुन! रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिसे उत्पन्न हुआ जान, वह इस जीवात्माको कर्मोंकी और उनके फलकी आसक्तिसे बाँधता है। ७। और हे अर्जुन! सर्व देहाभिमानियोंके मोहनेवाले तमोगुणको अज्ञानसे उत्पन्न हुआ जान, वह इस जीवात्माको प्रमाद*, आलस्य† और निद्राके द्वारा बांधता है। ८। क्योंकि हे अर्जुन! सत्त्वगुण सुखमें लगाता है और रजोगुण कर्ममें लगाता है तथा तमोगुण तो ज्ञानको आच्छादन करके अर्थात् ढकके प्रमादमें भी लगाता है। ९। और हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुण होता है अर्थात् बढ़ता है तथा रजोगुण और सत्त्वगुणको दबाकर तमोगुण बढ़ता है, वैसे ही तमोगुण और

* इन्द्रियां और अन्त:करणकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम "प्रमाद" है।
† कर्तव्यकर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम "आलस्य" है।

सत्त्वगुणको दबाकर रजोगुण बढ़ता है।१०। इसलिये जिस कालमें इस देहमें तथा अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें, चेतनता और बोधशक्ति उत्पन्न होती है, उस कालमें ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है।११। और हे अर्जुन ! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकारके कर्मोंका स्वार्थबुद्धिसे आरम्भ एवं अशान्ति अर्थात् मनकी चञ्चलता और विषय-भोगोंकी लालसा, यह सब उत्पन्न होते हैं।१२। तथा हे अर्जुन! तमोगुणके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश एवं कर्तव्यकर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियां यह सब ही उत्पन्न होते हैं।१३।

हे अर्जुन! जब यह जीवात्मा सत्त्वगुणकी वृद्धि-में मृत्युको प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने-वालोंके मलरहित अर्थात् दिव्य स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है।१४। रजोगुणके बढ़नेपर, अर्थात् जिस कालमें रजोगुण बढ़ता है, उस कालमें मृत्यु-को प्राप्त होकर, कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तथा तमोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ

पुरुष कीट, पशु आदि मूढ़ योनियोंमें उत्पन्न होता है।१५। क्योंकि सात्त्विक कर्मका तो सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है और राजस कर्मका फल दुःख एवं तामस कर्मका फल अज्ञान कहा है।१६। सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे निःसंदेह लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुणसे प्रमाद* और मोह† उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।१७। इसलिये सत्त्वगुणमें स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं और रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही रहते हैं एवं तमोगुणके कार्यरूप-निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित हुए तामस पुरुष अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं।१८।

हे अर्जुन! जिस कालमें द्रष्टा, अर्थात् समष्टि-चेतनमें एकीभावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष तीनों गुणोंके सिवाय अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता है अर्थात् गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं‡, ऐसा देखता है

*† इसी अध्यायके श्लोक १३ में देखना चाहिये।

‡ त्रिगुणमयी मायासे उत्पन्न हुए, अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंमें विचरना ही "गुणोंका गुणोंमें बर्तना" है।

और तीनों गुणोंसे अति परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस कालमें वह पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।१९। तथा यह पुरुष इन स्थूल* शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हुआ परमानन्दको प्राप्त होता है।२०। इस प्रकार भगवान्के रहस्ययुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा कि हे पुरुषोत्तम! इन तीनों गुणोंसे अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणोंसे युक्त होता है? और किस प्रकारके आचरणोंवाला होता है तथा हे प्रभो! मनुष्य किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है।२१।

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको† और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा

---

* बुद्धि, अहंकार और मन तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच भूत, पांच इन्द्रियोंके विषय—इस प्रकार इन २३ तत्त्वोंका पिण्डरूप यह स्थूल शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंका ही कार्य है, इसलिए इन तीनों गुणोंको इसकी उत्पत्तिका कारण कहा है।

† अन्तःकरण और इन्द्रियादिकोंमें आलस्यका अभाव होकर जो एक प्रकारकी चेतनता होती है, उसका नाम "प्रकाश" है।

तमोगुणके कार्यरूप मोहको* भी न तो प्रवृत्त होने-पर बुरा समझता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा करता है † । २२ । तथा जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता है और गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं‡ ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता है । २३ । जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ दुःख-सुखको समान समझनेवाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है । २४ । तथा जो मान और अप-

---

* निद्रा और आलस्य आदिकी वहुलतासे अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनशक्तिके लय होनेको यहां "मोह" नामसे समझना चाहिये ।

† जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही नित्य, एकीभावसे स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी मायाके प्रपञ्चरूप संसारसे सर्वथा अतीत हो गया है, उस गुणातीत पुरुषके अभिमानरहित अन्तःकरणमें तीनों गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियोंके प्रकट होने और न होनेपर किसी कालमें भी इच्छा, द्वेष आदि विकार नहीं होते हैं । यही उसके गुणोंसे अतीत होनेके प्रधान लक्षण हैं ।

‡ इसी अध्यायके श्लोक १९ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

मानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।२५। और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योगके* द्वारा, मेरेको निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणोंको अच्छी प्रकार उल्लङ्घन करके, सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये योग्य होता है। २६। हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूं अर्थात् उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख, यह सब मेरे ही नाम हैं, इसलिये इनका मैं परम आश्रय हूं।२७।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "गुणत्रयविभागयोग" नामक चौदहवां अध्याय ।।१४।।

पंद्रहवां अध्याय

उसके उपरान्त, श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले

---

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वासुदेव भगवान्को ही अपना स्वामी मानता हुआ, स्वार्थ और अभिमानको त्यागकर, श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करनेको "अव्यभिचारी भक्तियोग" कहते हैं।

कि हे अर्जुन! आदिपुरुष, परमेश्वररूप मूलवाले* और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले† जिस संसाररूप पीपलके वृक्षको अविनाशी‡ कहते हैं तथा जिसके वेद§ पत्ते कहे गये हैं, उस संसाररूप वृक्षको, जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है×।१। हे अर्जुन! उस संसारवृक्षकी तीनों गुणरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई

---

* आदिपुरुष नारायण वासुदेव भगवान् ही, नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होनेके कारण और सबके ऊपर नित्यधाममें सगुण-रूपसे वास करनेके कारण ऊर्ध्वनामसे कहे गये हैं और वे मायापति सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही, इस संसारवृक्षके कारण हैं इसलिये इस संसारवृक्षको 'ऊर्ध्वमूलवाला' कहते हैं। † उस आदिपुरुष परमेश्वरसे उत्पत्तिवाला होनेके कारण तथा नित्यधामसे नीचे ब्रह्मलोकमें वास करनेके कारण, हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माको परमेश्वरकी अपेक्षा अधः कहा है और वही इस संसारका विस्तार करनेवाला होनेसे इसकी मुख्य शाखा है, इसलिये इस संसारवृक्षको "अधःशाखावाला" कहते हैं। ‡ इस वृक्षका मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकालसे इसकी परम्परा चली आती है, इसलिये इस संसारको 'अविनाशी' कहते हैं। § इस वृक्षकी शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मोंके द्वारा इस संसारवृक्षकी रक्षा और वृद्धि करनेवाले एवं शोभाको बढ़ानेवाले होनेसे वेद "पत्ते" कहे गये हैं। × भगवान्-की योगमायासे उत्पन्न हुआ संसार क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तनको त्यागकर, केवल परमेश्वरका ही नित्य, निरन्तर अनन्य प्रेमसे चिन्तन करना "वेदके तात्पर्यको जानना" है।

एवं विषय* भोगरूप कोंपलोंवाली, देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएं† नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्ययोनिमें‡ कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली अहंता, ममता और वासना-रूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं। २। परंतु इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है, वैसा यहां विचारकालमें नहीं पाया जाता है§; क्योंकि न तो इसका आदि है× और न अन्त है+ तथा न अच्छी प्रकारसे स्थिति ही

---

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—यह पांचों, स्थूल देह और इन्द्रियोंकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण, उन शाखाओंकी 'कोंपलोंके' रूपमें कहे गये हैं। † मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे, सम्पूर्ण लोकोंके सहित देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंकी उत्पत्ति और विस्तार हुआ है, इसलिये उनका यहां 'शाखाओंके' रूपमें वर्णन किया है। ‡ अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंको, केवल मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली कहनेका कारण यह है कि अन्य सब योनियोंमें तो केवल पूर्वकृत कर्मोंके फलको भोगनेका ही अधिकार है और मनुष्ययोनिमें नवीन कर्मोंके करनेका भी अधिकार है। § इस संसारका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है और जैसा देखा, सुना जाता है, वैसा तत्त्वज्ञान होनेके उपरान्त नहीं पाया जाता, जिस प्रकार आंख खुलनेके उपरान्त स्वप्नका संसार नहीं पाया जाता। × इसका आदि नहीं है, यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबसे चली आती है, इसका कोई पता नहीं है। + इसका अन्त नहीं है, यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबतक चलती रहेगी, इसका कोई पता नहीं है।

है*, इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्य रूप† शस्त्रद्वारा काटकर‡ ।३। उसके उपरान्त उस परमपदरूप परमेश्वरको अच्छी प्रकार खोजना चाहिये कि जिसमें गये हुए पुरुष फिर पीछे संसारमें नहीं आते हैं और जिस परमेश्वरसे यह पुरातन संसारवृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उस ही आदिपुरुष नारायणके मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके ।४। नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिनने और परमात्माके स्वरूपमें है निरन्तर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकारसे नष्ट हो गयी है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त हुए ज्ञानीजन, उस अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं ।५।

---

* इसकी अच्छी प्रकार स्थिति भी नहीं है, यह कहनेका यह प्रयोजन यह है कि वास्तवमें यह क्षणभङ्गुर और नाशवान् है । † ब्रह्मलोकतकके भोग क्षणिक और नाशवान् हैं, ऐसा समझकर, इस संसारके समस्त विषयभोगोंमें सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना ही "दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र" है । ‡ स्थावर, जङ्गमरूप यावन्मात्र संसारके चिन्तनका तथा अनादिकालसे अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका त्याग करना ही संसारवृक्षका अवान्तर "मूलोंके सहित काटना" है ।

उस स्वयं प्रकाशमय परमपदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस परमपदको प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसारमें नहीं आते हैं, वही मेरा परमधाम है* । ६ ।

हे अर्जुन ! इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है† और वही इन त्रिगुणमयी मायामें स्थित हुई मनसहित पांचों इन्द्रियोंको आकर्षण करता है । ७ । कैसे कि, वायु गन्धके स्थानसे गन्धको जैसे ग्रहण करके ले जाता है वैसे ही देहादिकोंका स्वामी जीवात्मा भी जिस पहिले शरीरको त्यागता है, उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके, फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है । ८ । उस शरीरमें स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे ही विषयोंको सेवन करता है । ९ । परंतु शरीर छोड़कर

---

* परमधामका अर्थ गीता अध्याय ८ श्लोक २१ में देखना चाहिये ।

† जैसे विभागरहित स्थित हुआ भी महाकाश घटोंमें पृथक्-पृथक्की भांति प्रतीत होता है वैसे ही सब भूतोंमें एकीरूपसे स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक्-पृथक्की भांति प्रतीत होता है, इसीसे देहमें स्थित जीवात्माको भगवान्ने अपना "सनातन अंश" कहा है ।

जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको और विषयोंको भोगते हुएको अथवा तीनों गुणोंसे युक्त हुएको भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही तत्त्वसे जानते हैं।१०। क्योंकि योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित हुए इस आत्माको यत्न करते हुए ही तत्त्वसे जानते हैं और जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया है ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी इस आत्माको नहीं जानते हैं।११।

हे अर्जुन! जो तेज सूर्यमें स्थित हुआ सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें स्थित है और जो तेज अग्निमें स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान।१२। और मैं ही पृथ्वीमें प्रवेश करके, अपनी शक्तिसे सब भूतोंको धारण करता हूं और रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको पुष्ट करता हूं।१३। तथा मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित हुआ, वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपानसे युक्त हुआ, चार* प्रकारके अन्नको

* भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—ऐसे चार प्रकारके अन्न होते हैं,

पचाता हूँ ।१४। और मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मेरेसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन* होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य† हूँ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ । १५ ।

हे अर्जुन ! इस संसारमें नाशवान् और अविनाशी भी यह दो प्रकारके‡ पुरुष हैं, उनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है । १६ । तथा उन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा ऐसे कहा गया है । १७ । क्योंकि मैं नाशवान्, जड़वर्ग क्षेत्रसे तो

उनमें जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है, जैसे रोटी आदि और जो निगला जाता है वह भोज्य है, जैसे दूध आदि तथा जो चाटा जाता है वह लेह्य है, जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है, जैसे ऊख आदि ।

* विचारके द्वारा बुद्धिमें रहनेवाले संशय, विपर्यय आदि दोषोंको हटानेका नाम 'अपोहन' है । † सर्व वेदोंका तात्पर्य परमेश्वरको जनानेका है, इसलिये सब वेदोंद्वारा "जाननेके योग्य" एक परमेश्वर ही है । ‡ गीता अध्याय ७ श्लोक ४-५ में, जो अपरा और परा प्रकृतिके नामसे कहे गये हैं तथा अध्याय १३ श्लोक १ में, जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके नामसे कहे गये हैं, उन्हीं दोनोंको यहां क्षर और अक्षरके नामसे वर्णन किया है ।

सर्वथा अतीत हूं। और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूं, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूं।१८। हे भारत! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मेरेको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है, ।१९। हे निष्पाप अर्जुन! ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरेद्वारा कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है, अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता।२०।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र-विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "पुरुषोत्तमयोग" नामक पंद्रहवां अध्याय ॥१५॥

इस अध्यायमें भगवान्ने अपना परम गोपनीय प्रभाव भली प्रकारसे कहा है। जो मनुष्य उक्त प्रकारसे भगवान्को सर्वोत्तम समझ लेता है, फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान्के चिन्तनका त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य उत्तम समझता है, उसीमें उसका प्रेम होता है, और जिसमें प्रेम होता है, उसीका चिन्तन होता है, अतएव सबका मुख्य कर्तव्य है कि भगवान्के परम गोपनीय प्रभावको भली प्रकार समझनेके लिये नाशवान्, क्षणभङ्गुर संसारकी

आसक्तिका सर्वथा त्याग करके एवं परमात्माके शरण होकर भजन और सत्सङ्गकी ही विशेष चेष्टा करें।

सोलहवां अध्याय

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले, हे अर्जुन! दैवी संपदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूं, उनमेंसे सर्वथा भयका अभाव, अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति* और सात्त्विक दान† तथा इन्द्रियोंका दमन, भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेदशास्त्रोंके पठनपाठनपूर्वक, भगवत्के नाम और गुणोंका कीर्तन तथा स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।१। तथा मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना तथा

* परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम "ज्ञानयोगव्यवस्थिति" समझना चाहिये।

† गीता अध्याय १७ श्लोक २० में जिसका विस्तार किया है।

यथार्थ और प्रियभाषण*, अपना अपकार करने-वालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग एवं अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव और किसीकी भी निन्दादि न करना तथा सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव ।२। तथा तेज†, क्षमा, धैर्य और बाहर-भीतरकी शुद्धि‡ एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभि-मानका अभाव यह सब तो हे अर्जुन! दैवी संपदा-को प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं ।३।

हे पार्थ! पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान भी यह सब आसुरी संपदाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं ।४।

---

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसेका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम "सत्यभाषण" है ।

† श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम "तेज" है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर, उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं ।

‡ गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणी देखनी चाहिये ।

उन दोनों प्रकारकी संपदाओंमें दैवी संपदा तो मुक्तिके लिये और आसुरी संपदा बांधनेके लिये मानी गयी है, इसलिये हे अर्जुन ! तूँ शोक मत कर, क्योंकि तूं दैवी संपदाको प्राप्त हुआ है ।५।

हे अर्जुन ! इस लोकमें भूतोंके स्वभाव दो प्रकारके माने गये हैं--एक तो देवोंके जैसा और दूसरा असुरोंके जैसा, उनमें देवोंका स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया है, इसलिये अब असुरोंके स्वभावको भी विस्तारपूर्वक मेरेसे सुन ।६। हे अर्जुन ! आसुरी स्वभाववाले मनुष्य कर्तव्यकार्यमें प्रवृत्त होनेको और अकर्तव्यकार्यसे निवृत्त होनेको भी नहीं जानते हैं, इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है ।७। वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य कहते हैं कि जगत् आश्रयरहित और सर्वथा झूठा एवं बिना ईश्वरके अपने-आप स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये केवल भोगोंको भोगनेके लिये ही है, इसके सिवाय और क्या है ।८। इस प्रकार इस मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मन्द है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य

केवल जगत्का नाश करनेके लिये ही उत्पन्न होते हैं ।९। वे मनुष्य दम्भ, मान और मदसे युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होनेवाली कामनाओंका आसरा लेकर तथा अज्ञानसे मिथ्या सिद्धान्तोंको ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणोंसे युक्त हुए संसारमें बर्तते हैं ।१०। वे मरणपर्यन्त रहनेवाली अनन्त चिन्ताओंको आश्रय किये हुए और विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर हुए एवं इतनामात्र ही आनन्द है, ऐसे माननेवाले हैं ।११। इसलिये, आशारूप सैकड़ों फांसियोंसे बंधे हुए और काम-क्रोधके परायण हुए विषयभोगोंकी पूर्तिके लिये अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत-से पदार्थोंको संग्रह करनेकी चेष्टा करते हैं ।१२। उन पुरुषोंके विचार इस प्रकारके होते हैं कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथको प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह होवेगा ।१३। वह शत्रु मेरेद्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओंको भी मैं मारूंगा तथा मैं ईश्वर और ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूं और मैं सब सिद्धियोंसे युक्त एवं बलवान् और सुखी हूं ।१४। मैं बड़ा धनवान् और बड़े कुटुम्बवाला हूं, मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, हर्षको

प्राप्त होऊंगा, इस प्रकारके अज्ञानसे मोहित हैं।१५।

इसलिये वे अनेक प्रकारसे भ्रमित हुए चित्त-वाले अज्ञानीजन मोहरूप जालमें फंसे हुए एवं विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त हुए महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं।१६। वे अपने आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले घमण्डी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त हुए, शास्त्रविधिसे रहित केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा पाखण्डसे यजन करते हैं।१७। वे अहं-कार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादिके परा-यण हुए एवं दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले हैं।१८। ऐसे उन द्वेष करनेवाले पापा-चारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही गिराता हूं अर्थात् शूकर, कूकर आदि नीच योनियोंमें ही उत्पन्न करता हूं।१९। इसलिये हे अर्जुन ! वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म-में आसुरीयोनिको प्राप्त हुए मेरेको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।२०।

हे अर्जुन ! काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन

प्रकारके नरकके द्वार* आत्माका नाश करनेवाले हैं अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं, इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिये ।२१। क्योंकि हे अर्जुन ! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त हुआ अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है† इससे वह परम गति-को जाता है अर्थात् मेरेको प्राप्त होता है।२२। जो पुरुष शास्त्रकी विधिको त्यागकर अपनी इच्छासे बर्तता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है और न परमगतिको तथा न सुखको ही प्राप्त होता है।२३। इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तूं शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्मको ही करनेके लिये योग्य है । २४ ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र-विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "दैवासुरसंपद्विभागयोग" नामक सोलहवां अध्याय ।। १६ ।।

सत्रहवां अध्याय

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन

---

* सर्व अनर्थोंके मूल और नरककी प्राप्तिमें हेतु होनेसे यहां काम, क्रोध और लोभको "नरकका द्वार" कहा है। † अपने उद्धारके लिये भगवत्-आज्ञानुसार बर्तना ही "अपने कल्याणका आचरण करना" है।

बोला, हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर केवल श्रद्धासे युक्त हुए देवादिकोंका पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? क्या सात्त्विकी है? अथवा राजसी किंवा तामसी है? ।१। इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! मनुष्योंकी वह बिना शास्त्रीय संस्कारोंके केवल स्वभावसे उत्पन्न हुई श्रद्धा* सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है, उसको तूं मेरेसे सुन ।२। हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है। ३। उनमें सात्त्विक पुरुष तो देवोंको पूजते हैं और राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको पूजते हैं तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणोंको पूजते हैं। ४। हे अर्जुन! जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित, केवल मनोकल्पित घोर तपको तपते हैं तथा दम्भ और अहंकारसे युक्त एवं कामना

* अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके संचित संस्कारोंसे उत्पन्न हुई श्रद्धा "स्वभावजा श्रद्धा" कही जाती है।

आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं। ५। तथा जो शरीररूपसे स्थित भूतसमुदायको अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकोंके रूपमें परिणत हुए आकाशादि पांच भूतोंको और अन्तःकरणमें स्थित मुझ अन्तर्यामीको भी कृश करनेवाले हैं*, उन अज्ञानियोंको तूं आसुरी स्वभाववाले जान। ६।

हे अर्जुन ! जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है, वैसे ही भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं, उनके इस न्यारे-न्यारे भेदको तूं मेरेसे सुन। ७। आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले एवं रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले† तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ तो सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। ८। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं

* शास्त्रसे विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणोंद्वारा शरीरको सुखाना एवं भगवान्के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना, भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्माको "कृश करना" है।

† जिस भोजनका सार शरीरमें बहुत कालतक रहता है, उसको "स्थिर रहनेवाला" कहते हैं।

दुःख, चिन्ता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ राजस पुरुषको प्रिय होते हैं । ९ । तथा जो भोजन अधपका, रसरहित और दुर्गन्धयुक्त एवं बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है ।१०।

हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ है तथा करना ही कर्तव्य है ऐसे मनको समाधान करके फलको न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह यज्ञ तो सात्त्विक है । ११ । और हे अर्जुन ! जो यज्ञ केवल दम्भाचरणके ही लिये अथवा फलको भी उद्देश्य रखकर किया जाता है, उस यज्ञको तूं राजस जान । १२ । तथा शास्त्रविधिसे हीन और अन्नदानसे रहित एवं बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धाके किये हुए यज्ञको तामस यज्ञ कहते हैं ।१३।

हे अर्जुन ! देवता, ब्राह्मण, गुरु* और ज्ञानीजनोंका पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है ।१४।

* यहाँ गुरु शब्दसे माता, पिता, आचार्य और वृद्ध एवं अपनेसे जो किसी प्रकार भी बड़े हों उन सबको समझना चाहिये ।

तथा जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हित-
कारक एवं यथार्थ भाषण है* और जो वेद-शास्त्रोंके
पढ़नेका एवं परमेश्वरके नाम जपनेका अभ्यास है,
वह निःसंदेह वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है ।१५।
तथा मनकी प्रसन्नता और शान्तभाव एवं भगवत्-
चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तः-
करणकी पवित्रता, ऐसे यह मनसम्बन्धी तप कहा
जाता है ।१६। परंतु हे अर्जुन ! फलको न चाहनेवाले
निष्कामी योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए,
उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको तो सात्त्विक कहते
हैं ।१७। और जो तप सत्कार, मान और पूजाके
लिये अथवा केवल पाखण्डसे ही किया जाता है,
वह अनिश्चित† और क्षणिक फलवाला तप यहां
राजस कहा गया है ।१८। जो तप मूढ़तापूर्वक हठसे,
मन, वाणी और शरीरकी पीड़ाके सहित अथवा
दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है, वह
तप तामस कहा गया है ।१९। और हे अर्जुन ! दान

---

* मन और इन्द्रियोंद्वारा जैसा अनुभव किया हो ठीक वैसा ही कहनेका नाम "यथार्थ भाषण" है।

† "अनिश्चित फलवाला" उसको कहते हैं कि जिसका फल होने न होनेमें शङ्का हो।

देना ही कर्तव्य है, ऐसे भावसे जो दान देश[*], काल[†] और पात्रके[‡] प्राप्त होनेपर, प्रत्युपकार न करनेवाले-के लिये दिया जाता है, वह दान तो सात्त्विक कहा गया है।२०। और जो दान क्लेशपूर्वक[§] तथा प्रति-उपकारके प्रयोजनसे अर्थात् बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे अथवा फलको उद्देश्य रखकर[×] फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है।२१। और जो दान बिना सत्कार किये अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देशकालमें कुपात्रोंके लिये अर्थात् मद्य, मांसादि अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी, जारी आदि नीचकर्म करनेवालोंके लिये दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।२२।

हे अर्जुन! ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका

---

*-† जिस देश, कालमें जिस वस्तुका अभाव हो, वही देश, काल उस वस्तुद्वारा प्राणियोंकी सेवा करनेके लिये योग्य समझा जाता है। ‡भूखे, अनाथ, दुखी, रोगी और असमर्थ तथा भिक्षुक आदि तो अन्न, वस्त्र और ओषधि एवं जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो उस वस्तुद्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं और श्रेष्ठ आचरणोंवाले विद्वान् ब्राह्मणजन धनादि सब प्रकारके पदार्थोंद्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं।

§जैसे प्रायः वर्तमान समयके चन्दे-चिट्ठे आदिमें धन दिया जाता है।

×अर्थात् मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये।

सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है, उसीसे सृष्टिके आदिकालमें, ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गये हैं।२३। इसलिये वेदको कथन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी शास्त्रविधिसे नियत की हुई यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएं सदा 'ॐ' ऐसे इस परमात्माके नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।२४। तत् अर्थात् तत् नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है, ऐसे इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ, तपरूप क्रियाएं तथा दानरूप क्रियाएं कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं।२५। सत् ऐसे यह परमात्माका नाम, सत्य भावमें और श्रेष्ठ भावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी सत् शब्द प्रयोग किया जाता है।२६। तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी सत् है, ऐसे कही जाती है और उस परमात्माके अर्थ किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत् है, ऐसे कहा जाता है।२७। हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त असत् ऐसे कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक

है और न मरनेके पीछे ही लाभदायक है, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सच्चिदानन्दघन परमात्माके नामका निरन्तर चिन्तन करता हुआ, निष्काम-भावसे, केवल परमेश्वरके लिये शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्मोंका परम श्रद्धा और उत्साहके सहित आचरण करे ।२८।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र-विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "श्रद्धात्रयविभागयोग" नामक सत्रहवां अध्याय ।।१७।।

अठारहवां अध्याय

उसके उपरान्त अर्जुन बोला, हे महाबाहो ! हे अन्तर्यामिन् ! हे वासुदेव ! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ ।१। इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन ! कितने ही पण्डितजन तो काम्य कर्मोंके* त्यागको संन्यास जानते हैं और कितने ही विचार-कुशल पुरुष सब कर्मोंके फलके त्यागको† त्याग

* स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा रोग-संकटादिकी निवृत्तिके लिये जो यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म किये जाते हैं उनका नाम "काम्यकर्म" है ।

† ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा

कहते हैं ।२। तथा कई एक विद्वान् ऐसे कहते हैं कि कर्म सभी दोषयुक्त हैं, इसलिये त्यागनेके योग्य हैं और दूसरे विद्वान् ऐसे कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं ।३।

परंतु हे अर्जुन ! उस त्यागके विषयमें तू मेरे निश्चयको सुन, हे पुरुषश्रेष्ठ ! वह त्याग सात्त्विक, राजस और तामस ऐसे तीनों प्रकारका ही कहा गया है ।४। तथा यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागनेके योग्य नहीं है, किंतु वह निःसंदेह करना कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप यह तीनों ही बुद्धिमान्* पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं ।५। इसलिये हे पार्थ ! यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म तथा और भी सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म, आसक्तिको और फलोंको त्यागकर, अवश्य करने चाहिये, ऐसा मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है ।६। और हे अर्जुन ! नियत कर्मका† त्याग करना योग्य नहीं है,

---

गृहस्थका निर्वाह एवं शरीर-सम्बन्धी खानपान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें इस लोक और परलोककी सम्पूर्ण कामनाओंके त्यागका नाम "सब कर्मोंके फलका त्याग" है।

* वह मनुष्य "बुद्धिमान्" है, जो कि फल और आसक्तिको त्यागकर, केवल भगवत्-अर्थ कर्म करता है। † इसी अध्यायके श्लोक ४८ की टिप्पणीमें इसका अर्थ देखना चाहिये।

इसलिये मोहसे उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है ।७। यदि कोई मनुष्य जो कुछ कर्म है, वह सब ही दुःखरूप है ऐसे समझकर, शारीरिक क्लेश-के भयसे कर्मोंका त्याग कर दे, तो वह पुरुष उस राजस त्यागको करके भी त्यागके फलको प्राप्त नहीं होता है; अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है ।८। हे अर्जुन! करना कर्तव्य है ऐसे समझकर ही जो शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ कर्तव्यकर्म आसक्तिको और फलको त्यागकर किया जाता है, वह ही सात्त्विक त्याग माना गया है अर्थात् कर्तव्यकर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें जो आसक्ति और फलका त्यागना है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है ।९। हे अर्जुन! जो पुरुष अकल्याणकारक कर्मसे तो द्वेष नहीं करता है और कल्याणकारक कर्ममें आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त हुआ पुरुष संशयरहित, ज्ञान-वान् और त्यागी है ।१०। क्योंकि देहधारी पुरुषके द्वारा सम्पूर्णतासे सब कर्म त्यागे जानेको शक्य नहीं हैं, इससे जो पुरुष कर्मोंके फलका त्यागी है वह ही त्यागी है ऐसे कहा जाता है ।११। सकामी पुरुषों-के कर्मका ही अच्छा, बुरा और मिला हुआ ऐसे

तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् भी होता है और त्यागी* पुरुषोंके कर्मोंका फल, किसी कालमें भी नहीं होता, क्योंकि उनके द्वारा होनेवाले कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं ।१२।

हे महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके लिये अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके सिद्ध होनेमें, यह पांच हेतु सांख्यसिद्धान्तमें कहे गये हैं, उनको तूं मेरेसे भली प्रकार जान ।१३। हे अर्जुन ! इस विषयमें आधार† और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करण‡ और नाना प्रकारकी न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव§ कहा गया है ।१४। क्योंकि मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे शास्त्रके अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरम्भ करता है, उसके यह पांचों ही कारण हैं ।१५। परंतु ऐसा होनेपर भी जो पुरुष अशुद्धबुद्धि× होनेके कारण, उस विषय-

---

* सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें फल, आसक्ति और कर्तापनके अभिमानको जिसने त्याग दिया है, उसीका नाम "त्यागी" है। † जिसके आश्रय कर्म किये जायं, उसका नाम "आधार" है । ‡ जिन-जिन इन्द्रियादिकोंके और साधनोंके द्वारा कर्म किये जाते हैं, उनका नाम "करण" है । § पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारोंका नाम "दैव" है । × सत्संग और शास्त्रके अभ्याससे तथा भगवत्-अर्थ कर्म और उपासनाके करनेसे, मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध होती है, इसलिये जो उपरोक्त साधनोंसे रहित है, उसकी बुद्धि अशुद्ध है, ऐसा समझना चाहिये ।

में केवल शुद्धस्वरूप आत्माको कर्ता देखता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं देखता है ।१६। हे अर्जुन! जिस पुरुषके अन्तःकरणमें मैं कर्ता हूं, ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और सम्पूर्ण कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बंधता है* ।१७। हे भारत! ज्ञाता†, ज्ञान‡ और ज्ञेय§ यह तीनों तो कर्मके प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे तो कर्ममें प्रवृत्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है और कर्ता× करण÷ और क्रिया+ यह तीनों कर्मके संग्रह हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे कर्म बनता है ।१८।

*जैसे अग्नि, वायु और जलके द्वारा प्रारब्धवश किसी प्राणीकी हिंसा होती देखनेमें आवे, तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है, वैसे ही जिस पुरुषका देहमें अभिमान नहीं है और स्वार्थरहित केवल संसारके हितके लिये ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियाएं होती हैं, उस पुरुषके शरीर और इन्द्रियों द्वारा यदि किसी प्राणीकी हिंसा होती हुई लोकदृष्टिमें देखी जाय तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है; क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारके न होनेसे किसी प्राणीकी हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्तृत्वाभिमानके किया हुआ कर्म वास्तवमें अकर्म ही है, इसलिये वह पुरुष पापसे नहीं बंधता है। † जाननेवालेका नाम "ज्ञाता" है। ‡ जिसके द्वारा जाना जाय, उसका नाम "ज्ञान" है। § जाननेमें आनेवाली वस्तुका नाम "ज्ञेय" है। ×कर्म करनेवालेका नाम "कर्ता" है। ÷जिन साधनोंसे कर्म किया जाय, उनका नाम "करण" है। +करनेका नाम "क्रिया" है।

उन सबमें ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुणों-के भेदसे सांख्यशास्त्रमें तीन-तीन प्रकारसे कहे गये हैं, उनको भी तूं मेरेसे भली प्रकार सुन ।१९। हे अर्जुन ! जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतों-में, एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित, समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तूं सात्त्विक जान ।२०। और जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें, भिन्न-भिन्न प्रकारके अनेक भावोंको न्यारा-न्यारा करके जानता है, उस ज्ञान-को तूं राजस जान ।२१। और जो ज्ञान एक कार्य-रूप शरीरमें ही सम्पूर्णताके सदृश आसक्त है अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य एक क्षणभङ्गुर नाशवान् शरीरको ही आत्मा मानकर, उसमें सर्वस्वको भांति आसक्त रहता है तथा जो बिना युक्तिवाला, तत्त्व-अर्थसे रहित और तुच्छ है, वह ज्ञान तामस कहा गया है ।२२।

हे अर्जुन! जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्तापनके अभिमानसे रहित, फलको न चाहनेवाले पुरुषद्वारा, बिना रागद्वेषसे किया हुआ है, वह कर्म तो सात्त्विक कहा जाता है ।२३। और जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त है तथा फलको

चाहनेवाले और अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है।२४। तथा जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचार कर, केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है।२५।

हे अर्जुन! जो कर्ता आसक्तिसे रहित और अहंकारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साहसे युक्त एवं कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है, वह कर्ता तो सात्त्विक कहा जाता है।२६। जो आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला अशुद्धाचारी और हर्ष, शोकसे लिपायमान है, वह कर्ता राजस कहा गया है।२७। जो विक्षेपयुक्त चित्तवाला, शिक्षासे रहित, घमण्डी, धूर्त और दूसरेकी आजीविकाका नाशक एवं शोक करनेके स्वभाववाला, आलसी और दीर्घसूत्री* है, वह कर्ता तामस कहा जाता है।२८। हे अर्जुन! तू बुद्धिका और धारणशक्तिका भी गुणोंके

* "दीर्घसूत्री" उसको कहा जाता है कि जो थोड़े कालमें होने-लायक साधारण कार्यको भी फिर कर लेंगे ऐसी आशासे वहुत काल-तक नहीं पूरा करता।

कारण तीन प्रकारका भेद सम्पूर्णतासे विभागपूर्वक मेरेसे कहा हुआ सुन ।२९। हे पार्थ ! प्रवृत्तिमार्ग* और निवृत्तिमार्गको† तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको एवं भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको जो बुद्धि तत्त्वसे जानती है, वह बुद्धि तो सात्त्विकी है ।३०। हे पार्थ ! जिस बुद्धिके द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्मको तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसी है ।३१। और हे अर्जुन! जो तमोगुणसे आवृत हुई बुद्धि अधर्मको धर्म ऐसा मानती है, तथा और भी सम्पूर्ण अर्थोंको विपरीत ही मानती है, वह बुद्धि तामसी है ।३२।

हे पार्थ ! ध्यानयोगके द्वारा जिस अव्यभिचारिणी धारणासे‡ मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको§ धारण करता है, वह धारणा तो

* गृहस्थमें रहते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर, भगवत्-अर्पणबुद्धिसे केवल लोकशिक्षाके लिये, राजा जनककी भाँति वर्तनेका नाम "प्रवृत्तिमार्ग" है । † देहाभिमानको त्यागकर, केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित हुए श्रीशुकदेवजी और सनकादिकोंकी भांति संसारसे उपराम होकर विचरनेका नाम "निवृत्तिमार्ग" है । ‡ भगवद्विषयके सिवाय अन्य सांसारिक विषयोंको धारण करना ही व्यभिचार दोष है, उस दोषसे जो रहित है, वह "अव्यभिचारिणी धारणा" है । § मन, प्राण और इन्द्रियोंको भगवत्-प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान और निष्काम कर्मोंमें लगानेका नाम "उनकी क्रियाओंको धारण करना" है।

सात्त्विकी है।३३। और हे पृथापुत्र अर्जुन! फलकी इच्छावाला मनुष्य अति आसक्तिसे जिस धारणाके द्वारा धर्म, अर्थ और कामोंको धारण करता है, वह धारणा राजसी है। ३४। तथा हे पार्थ! दुष्टबुद्धि-वाला मनुष्य जिस धारणाके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दुःखको एवं उन्मत्तताको भी नहीं छोड़ता है अर्थात् धारण किये रहता है, वह धारणा तामसी है। ३५।

हे अर्जुन! अब सुख भी तूं तीन प्रकारका मेरेसे सुन; हे भरतश्रेष्ठ! जिस सुखमें साधक पुरुष भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है और दुःखोंके अन्तको प्राप्त होता है। ३६। वह सुख प्रथम साधनके आरम्भकालमें यद्यपि विषके सदृश भासता है* परंतु परिणाममें अमृतके तुल्य है, इसलिये जो भगवत्-विषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न हुआ सुख है वह सात्त्विक कहा गया है। ३७। जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह यद्यपि भोगकालमें अमृतके सदृश भासता है, परंतु

* जैसे खेलमें आसक्तिवाले बालकको विद्याका अभ्यास मूढ़ताके कारण प्रथम विषके तुल्य भासता है, वैसे ही विषयोंमें आसक्तिवाले पुरुषको भगवत् भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनोंका अभ्यास, मर्म न जाननेके कारण, प्रथम विषके सदृश भासता है।

परिणाममें विषके सदृश* है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है ।३८। तथा जो सुख भोगकालमें और परिणाममें भी आत्माको मोहनेवाला है वह निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है ।३९। और हे अर्जुन ! पृथ्वीमें या स्वर्गमें अथवा देवताओंमें ऐसा वह कोई भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृतिसे उत्पन्न हुए, तीनों गुणोंसे रहित हो, क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत् त्रिगुणमयी मायाका ही विकार है ।४०।

इसलिये हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों-के तथा शूद्रोंके भी कर्म स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणों करके विभक्त किये गये हैं अर्थात् पूर्वकृत कर्मोंके संस्काररूप स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणोंके अनुसार विभक्त किये गये हैं । ४१ । उनमें अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि+, धर्मके लिये कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रिय और शरीरकी सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्रविषयक ज्ञान और परमात्मतत्त्वका अनुभव

---

* बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और परलोकका नाशक होनेसे विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले सुखको "परिणाममें विषके सदृश" कहा है ।

+ गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

भी, ये तो ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।४२। शूर-वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें भी न भागने-का स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर, शास्त्राज्ञानु-सार शासनद्वारा, प्रेमके सहित पुत्रतुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव—ये सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।४३। खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार*—ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं और सब वर्णोंकी सेवा करना—यह शूद्रका भी स्वाभा-विक कर्म है।४४। एवं इस अपने-अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य, भगवत्प्राप्तिरूप परमसिद्धि-को प्राप्त होता है; परंतु जिस प्रकारसे अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तू मेरेसे सुन।४५। हे अर्जुन! जिस परमात्मासे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति हुई है

* वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल, नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहराकर, उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादि दोषोंसे रहित जो सत्यता-पूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है, उसका नाम "सत्य व्यवहार" है।

और जिससे यह सर्वजगत् व्याप्त है* उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजकर† मनुष्य परम-सिद्धिको प्राप्त होता है ।४६। इसलिये अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे, गुणरहित भी अपना धर्मश्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्मको करता हुआ मनुष्य, पापको नहीं प्राप्त होता ।४७। अतएव हे कुन्तीपुत्र ! दोषयुक्त भी स्वाभाविक‡ कर्मको नहीं त्यागना चाहिये; क्योंकि धुएंसे अग्निके सदृश सब ही कर्म किसी न किसी दोषसे आवृत हैं ।४८। हे अर्जुन ! सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष सांख्ययोगके द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धिको प्राप्त होता है अर्थात् क्रिया-

*जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है, वैसे ही सम्पूर्ण संसार सच्चिदानन्द-घन परमात्मासे व्याप्त है। † जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको ही सर्वस्व समझकर, पतिका चिन्तन करती हुई, पतिके आज्ञानुसार, पतिके ही लिये मन, वाणी, शरीरसे कर्म करती है, वैसे ही परमेश्वरको ही सर्वस्व समझकर, परमेश्वरका चिन्तन करते हुए, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार मन, वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये स्वाभाविक कर्तव्य कर्मका आचरण करना "कर्मद्वारा परमेश्वरको पूजना" है। ‡ प्रकृतिके अनुसार शास्त्रविधिसे नियत किये हुए, जो वर्णाश्रमके धर्म और सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म हैं, उनको ही यहाँ "स्वधर्म", "सहजकर्म", "स्वकर्म", "नियतकर्म", "स्वभावजकर्म", "स्वभाव-नियतकर्म" इत्यादि नामोंसे कहा है।

रहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त होता है ।४९। इसलिये हे कुन्तीपुत्र ! अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ पुरुष, जैसे सांख्ययोगके द्वारा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है तथा जो तत्त्वज्ञानकी परानिष्ठा है, उसको भी तूं मेरेसे संक्षेपसे जान ।५०।

हे अर्जुन ! विशुद्ध बुद्धिसे युक्त एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला तथा मिताहारी, *जीते हुए मन, वाणी, शरीरवाला और दृढ़ वैराग्यको भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरन्तर ध्यानयोगके परायण हुआ, सात्त्विक धारणासे, † अन्तःकरणको वशमें करके तथा शब्दादिक विषयोंको त्यागकर और रागद्वेषोंको नष्ट करके ।५१, ५२। तथा अहं-कार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रहको त्याग-कर ममतारहित और शान्त अन्तःकरण हुआ, सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये योग्य होता है ।५३। फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित हुआ, प्रसन्न चित्तवाला पुरुष न तो किसी वस्तुके लिये शोक करता है और न

* हल्का और अल्प आहार करनेवाला ।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३ में जिसका विस्तार है ।

किसीकी आकांक्षा ही करता है एवं सब भूतोंमें समभाव हुआ*, मेरी पराभक्तिको† प्राप्त होता है ।५४। उस पराभक्तिके द्वारा मेरेको तत्त्वसे भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाववाला हूँ तथा उस भक्तिसे मेरेको तत्त्वसे जानकर, तत्काल ही मेरेमें प्रवेश हो जाता है अर्थात् अनन्यभावसे मेरेको प्राप्त हो जाता है । फिर उसकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवके सिवाय और कुछ भी नहीं रहता ।५५।

मेरे परायण हुआ निष्काम कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है ।५६। इसलिये हे अर्जुन! तूं सब कर्मोंको मनसे मेरेमें अर्पण करके‡, मेरे परायण हुआ, समत्वबुद्धि-रूप निष्काम कर्मयोगको अवलम्बन करके, निरन्तर मेरेमें चित्तवाला हो ।५७। इस प्रकार तूं मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ, मेरी कृपासे जन्म, मृत्यु आदि सब संकटोंको अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकारके कारण, मेरे वचनोंको नहीं

---

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये ।

† जो तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता, वही यहां "पराभक्ति", "ज्ञानकी परानिष्ठा", "परमनैष्कर्म्यसिद्धि" और "परमसिद्धि" इत्यादि नामों-से कही गयी है ।

‡ गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में जिसकी विधि कही है ।

सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा ।५८। जो तू अहंकारको अवलम्बन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो यह तेरा निश्चय मिथ्या है, क्योंकि क्षत्रियपनका स्वभाव तेरेको जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा । ५९ ।

हे अर्जुन ! जिस कर्मको तूं मोहसे नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बंधा हुआ परवश होकर करेगा ।६०। क्योंकि हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको, अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित है ।६१। इसलिये हे भारत ! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्यशरणको* प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्ति-को और सनातन परमधामको प्राप्त होगा ।६२।

इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय

---

* लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर एवं शरीर और संसारमें अहंता, ममतासे रहित होकर, केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक, निरन्तर भगवान्-के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्-का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना, यह "सब प्रकारसे परमात्माके अनन्यशरण" होना है ।

ज्ञान मैंने तेरे लिये कहा है। इस रहस्ययुक्त ज्ञानको सम्पूर्णतासे अच्छी प्रकार विचारके, फिर तूं जैसे चाहता है वैसे ही कर अर्थात् जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर ।६३। इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर नहीं मिलनेके कारण, श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन! सम्पूर्ण गोपनीयोंसे भी अति गोपनीय, मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तूं फिर भी सुन; क्योंकि तूं मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परमहितकारक वचन मैं तेरे लिये कहूंगा ।६४। हे अर्जुन! तूं केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धाभक्तिसहित, निष्काम भावसे नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मेरा (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट, कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त, पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका) मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान्, विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको विनय-

भावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर, ऐसा करनेसे तूँ मेरेको ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि तूं मेरा अत्यन्त प्रिय सखा है।६५। इसलिये सर्व धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य-शरणको* प्राप्त हो, मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूंगा, तूं शोक मत कर।६६।

हे अर्जुन! इस प्रकार, तेरे हितके लिये कहे हुए इस गीतारूप परम रहस्यको, किसी कालमें भी न तो तपरहित मनुष्यके प्रति कहना चाहिये और न भक्ति† रहितके प्रति तथा न बिना सुननेकी इच्छा-वालेके ही प्रति कहना चाहिये एवं जो मेरी निन्दा करता है उसके प्रति भी नहीं कहना चाहिये, परंतु जिसमें यह सब दोष नहीं हों, ऐसे भक्तोंके प्रति प्रेमपूर्वक उत्साहके सहित कहना चाहिये।६७। क्योंकि जो पुरुष मेरेमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा, वह

---

* इसी अध्यायके श्लोक ६२ की टिप्पणीमें "अनन्यशरण" का भाव देखना चाहिये।

† वेद, शास्त्र और परमेश्वर तथा महात्मा और गुरुजनोंमें श्रद्धा, प्रेम और पूज्यभावका नाम "भक्ति" है।

निःसंदेह मेरेको ही प्राप्त होगा ।६८। और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा पृथ्वीमें दूसरा कोई होवेगा ।६९। तथा हे अर्जुन ! जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे* पूजित होऊंगा, ऐसा मेरा मत है ।७०। जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिसे रहित हुआ, इस गीताशास्त्रका श्रवणमात्र भी करेगा वह भी पापोंसे मुक्त हुआ, उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होवेगा ।७१।

इस प्रकार गीताका माहात्म्य कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अर्जुनसे पूछा, हे पार्थ ! क्या यह मेरा वचन तैंने एकाग्रचित्तसे श्रवण किया ? और हे धनंजय ! क्या तेरा अज्ञानसे उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ ? ।७२। इस प्रकार भगवान्के पूछने-पर अर्जुन बोला, हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं संशयरहित हुआ स्थित हूं और आपकी आज्ञा पालन करूंगा ।७३।

इसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन् ! इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेवके और महात्मा अर्जुनके, इस अद्भुत रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारक संवादको सुना ।७४। कैसे

* गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ का अर्थ देखना चाहिये ।

कि श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टिद्वारा मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योगको साक्षात् कहते हुए स्वयम् योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्से सुना है ।७५। इसलिये हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त कल्याणकारक और अद्भुत संवाद-को पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित होता हूं। ७६। तथा हे राजन् ! श्री हरिके* उस अति अद्भुत रूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्त-में महान् आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित होता हूं। ७७। हे राजन् ! विशेष क्या कहूं, जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहां गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन है, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है ऐसा मेरा मत है। ७८।

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र-विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "मोक्षसंन्यासयोग" नामक अठारहवां अध्याय ।। १८ ।।

* जिसका स्मरण करनेसे पापोंका नाश होता है, उसका नाम "हरि" है।

"श्रीमद्भगवद्गीता" यह एक परम रहस्यका विषय है। इसको परम कृपालु श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनको निमित्त करके सभी प्राणियोंके हितके लिये कहा है। परंतु इसके प्रभावको वे ही पुरुष जान सकते हैं कि जो भगवान्के शरण होकर श्रद्धा, भक्तिसहित इसका अभ्यास करते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्योंको उचित है कि जितना शीघ्र हो सके अज्ञाननिद्रासे चेतकर एवं अपना मुख्य कर्तव्य-समझकर श्रद्धा, भक्तिसहित सदा इसका श्रवण, मनन और पठन-पाठनद्वारा अभ्यास करते हुए भगवान्की आज्ञानुसार साधनमें लग जाय। क्योंकि जो मनुष्य श्रद्धा, भक्तिसहित इसका मर्म जाननेके लिये इसके अन्तर प्रवेश करके सदा इसका मनन करते हैं एवं भगवत् आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर रहते हैं, उनके अन्तःकरणमें प्रतिदिन नये-नये सद्भाव उत्पन्न होते हैं और वे शुद्धान्तःकरण हुए शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।



हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्-प्राप्ति

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी मनुष्य त्यागके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है । परमात्माको प्राप्त करने के लिये "त्याग" ही मुख्य साधन है । अतएव सात श्रेणियोंमें विभक्त करके त्यागके लक्षण संक्षेपमें लिखे जाते हैं ।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग ।

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य भोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना । यह पहिली श्रेणीका त्याग है ।

(२) काम्य कर्मोंका त्याग ।

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एवं रोग-संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना* । यह दूसरी श्रेणीका त्याग है ।

---

* यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय जो कि स्वरूपसे तो सकाम हो परंतु उसके न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग ।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत्-प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना । यह तीसरी श्रेणीका त्याग है ।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग ।

अपने सुखके लिए किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एवं बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने की मनमें इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं, उन सबका त्याग करना* । यह चौथी श्रेणीका त्याग है ।

(५) संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग ।

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका

हो या कर्म-उपासनाकी परम्परामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो स्वार्थका त्याग करके केवल लोक-संग्रहके लिये उसका कर लेना सकाम कर्म नहीं है ।

* यदि कोई ऐसा अवसर योग्यतासे प्राप्त हो जाय कि शरीर सम्बन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थोंके स्वीकार न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता हो या लोकशिक्षामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो उस अवसरपर स्वार्थका त्याग करके केवल उनकी प्रीतिके लिये सेवादिका स्वीकार करना दोषयुक्त नहीं है; क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदिसे की हुई सेवा एवं बन्धु-बान्धव और

निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खानपान इत्यादि जितने कर्तव्य कर्म हैं, उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

(क) ईश्वर-भक्तिमें आलस्यका त्याग।

अपने जीवनका परम कर्तव्य मानकर परमदयालु, सबके सुहृद्, परमप्रेमी अन्तर्यामी परमेश्वरके गुण, प्रभाव और प्रेमकी रहस्यमयी कथाका श्रवण, मनन और पठन-पाठन करना तथा आलस्यरहित होकर उनके परमपुनीत नामका उत्साहपूर्वक ध्यानसहित निरन्तर जप करना।

(ख) ईश्वर-भक्तिमें कामनाका त्याग।

इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंको क्षणभङ्गुर, नाशवान् और भगवान्की भक्तिमें बाधक समझकर किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये न तो भगवान्से प्रार्थना करना और न मनमें इच्छा ही रखना। तथा किसी प्रकारका संकट आ जानेपर भी उसके निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना न करना अर्थात् हृदयमें ऐसा भाव रखना कि प्राण भले ही चले जायं; परंतु इस मिथ्या जीवनके लिये विशुद्ध भक्तिमें कलङ्क लगाना उचित नहीं है। जैसे भक्त प्रह्लादने पिताद्वारा बहुत सताये जानेपर भी अपने कष्ट-निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना नहीं की।

अपना अनिष्ट करनेवालोंको भी "भगवान् तुम्हारा बुरा करें" इत्यादि किसी प्रकारके कठोर शब्दोंसे सराप न देना और उनका अनिष्ट होनेकी मनमें इच्छा भी न रखना।

मित्र आदिद्वारा दिये हुए भोजनादि पदार्थ स्वीकार न करनेसे उनको कष्ट होना एवं लोक-मर्यादामें बाधा पड़ना सम्भव है।

भगवान्की भक्तिके अभिमानमें आकर किसीको वरदानादि भी न देना, जैसे कि "भगवान् तुम्हें आरोग्य करें" "भगवान् तुम्हारा दुःख दूर करें" "भगवान् तुम्हारी आयु बढ़ावें" इत्यादि ।

पत्रव्यवहारमें भी सकाम शब्दोंका न लिखना अर्थात् जैसे "अठे उठे श्रीठाकुरजी सहाय छै" "ठाकुरजी विक्री चलासी" "ठाकुरजी वर्षा करसी" "ठाकुरजी आराम करसी" इत्यादि सांसारिक वस्तुओंके लिये ठाकुरजीसे प्रार्थना करनेके रूपमें सकाम शब्द मारवाड़ीसमाजमें प्रायः लिखे जाते हैं, वैसे न लिखकर "श्रीपरमात्मादेव आनन्दरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं" "श्री परमेश्वरका भजन सार है" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना तथा इसके सिवा अन्य किसी प्रकारसे भी लिखने, बोलने आदिमें सकाम शब्दोंका प्रयोग न करना ।

(ग) देवताओंके पूजनमें आलस्य और कामनाका त्याग ।

शास्त्रमर्यादासे अथवा लोक मर्यादासे पूजनेके योग्य देवताओंको पूजनेका नियत समय आनेपर उनका पूजन करनेके लिये भगवान्की आज्ञा है एवं भगवान्की आज्ञाका पालन करना परम कर्तव्य है, ऐसा समझकर उत्साहपूर्वक विधिके सहित उनका पूजन करना एवं उनसे किसी प्रकारकी भी कामना न करना ।

उनके पूजनके उद्देश्यसे रोकड़-बहीखाते आदिमें भी सकाम शब्द न लिखना अर्थात् जैसे मारवाड़ीसमाजमें नये वसनेके दिन अथवा दीपमालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करके "श्रीलक्ष्मीजी लाभ मोकलो देसी" "भण्डार भरपूर राखसी" "ऋद्धि सिद्धि करसी" "श्रीकालीजीके आसरे" "श्रीगङ्गाजीके आसरे" इत्यादि बहुत-से सकाम शब्द लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीलक्ष्मीनारायणजी सब

जगह आनन्दरूपसे विराजमान हैं" तथा "बहुत आनन्द और उत्साहके सहित श्रीलक्ष्मीजीका पूजन किया" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना और नित्य रोकड़-नकल आदिके आरम्भ करनेमें भी उपरोक्त रीतिसे ही लिखना ।

(घ) माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवामें आलस्य और कामनाका त्याग ।

माता, पिता, आचार्य एवं और भी जो पूजनीय पुरुष वर्ण, आश्रम, अवस्था और गुणोंमें किसी प्रकार भी अपनेसे बड़े हों उन सबकी सब प्रकारसे नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। इस भावको हृदयमें रखते हुए आलस्यका सर्वथा त्याग करके, निष्काम भावसे उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार उनकी सेवा करनेमें तत्पर रहना ।

(ङ) यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग ।

पञ्चमहायज्ञादि* नित्य कर्म एवं अन्यान्य नैमित्तिक कर्मरूप यज्ञादिका करना तथा अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध और धनादि पदार्थोंके दानद्वारा संपूर्ण जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी और शरीरसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना तथा अपने धर्मका पालन करनेके लिये हर प्रकारसे कष्ट सहन करना इत्यादि शास्त्रविहित कर्मोंमें इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंकी कामनाका सर्वथा त्याग करके एवं अपना परम कर्तव्य मानकर

* पञ्च महायज्ञ ये हैं—देवयज्ञ (अग्निहोत्रादि), ऋषियज्ञ (वेदपाठ, सन्ध्या, गायत्री-जपादि), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्धादि), मनुष्ययज्ञ (अतिथिसेवा) और भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) ।

श्रद्धासहित उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ ही उनका आचरण करना ।

(च) आजीविकाद्वारा गृहस्थ-निर्वाहके उपयुक्त कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग ।

आजीविकाके कर्म जैसे वैश्यके लिये कृषि, गोरक्ष्य और वाणिज्यादि कहे हैं, वैसे ही जो अपने-अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार शास्त्रमें विधान किये गये हों उन सबके पालनद्वारा संसारका हित करते हुए ही गृहस्थका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है। इसलिये अपना कर्तव्य मानकर लाभ-हानिको समान समझते हुए सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग करके उत्साहपूर्वक उपरोक्त कर्मोंका करना ।*

(छ) शरीरसंबन्धी कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग ।

शरीरनिर्वाहके लिये शास्त्रोक्त रीतिसे भोजन, वस्त्र और औषधादिके सेवनरूप जो शरीरसंबन्धी कर्म हैं, उनमें सब प्रकारके भोगविलासोंकी कामनाका त्याग करके एवं सुख, दुःख, लाभ, हानि और जीवन-मरण आदिको समान समझकर केवल भगवत्-प्राप्तिके लिये ही योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना ।

---

* उपरोक्त भावसे करनेवाले पुरुषके कर्म लोभसे रहित होनेके कारण उनमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं आ सकता; क्योंकि आजीविकाके कर्मोंमें लोभ ही विशेषरूपसे पाप करानेका हेतु है, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि गीता अध्याय १८ श्लोक ४४ की टिप्पणीमें जैसे वैश्यके प्रति वाणिज्यके दोषोंका त्याग करनेके लिये विस्तारपूर्वक लिखा है, उसी प्रकार अपने-अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार संपूर्ण कर्मोंमें सब प्रकारके दोषोंका त्याग करके केवल भगवान्‌की आज्ञा समझकर, भगवान्‌के लिये निष्काम भावसे ही संपूर्ण कर्मोंका आचरण करे ।

पूर्वोक्त चार श्रेणियोंके त्यागसहित इस पाँचवीं श्रेणीके त्यागानुसार सम्पूर्ण दोषोंका और सब प्रकारकी कामनाओंका नाश होकर केवल एक भगवत्-प्राप्तिकी ही तीव्र इच्छाका होना ज्ञानकी पहिली भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये ।

(६) संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग

धन, भवन और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुएँ तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण वान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोकके और परलोकके जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही अनन्यभावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना यह छठी श्रेणीका त्याग है* ।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्‌में ही

---

* सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग तो तीसरी और पांचवीं श्रेणीके त्यागमें कहा गया, परंतु उपरोक्त त्यागके होनेपर भी उनमें ममता और आशक्ति शेष रह जाती है, जैसे भजन, ध्यान और सत्सङ्गके अभ्याससे भरतमुनिका सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग होनेपर भी हरिणमें और हरिणके पालनरूप कर्ममें ममता और आशक्ति बनी रही । इसलिये संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिके त्यागको छठी श्रेणीका त्याग कहा है ।

अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको भगवान्के गुण, प्रभाव और रहस्यसे भरी हुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना-सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य, विलास, प्रमाद, निन्दा, विषय-भोग और व्यर्थ वार्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता एवं उनके द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्म भगवान्के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही बिना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका त्याग होकर केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही विशुद्ध प्रेमका होना ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग

संसारके सम्पूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं; ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीरसहित संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना यह सातवीं श्रेणीका त्याग है।*

* सम्पूर्ण संसारके पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका एवं ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर भी उनमें सूक्ष्म वासना

इस सातवीं श्रेणीके त्यागरूप परवैराग्यको १ प्राप्त हुए पुरुषोंके अन्तःकरणकी वृत्तियां सम्पूर्ण संसारसे अत्यन्त उपराम हो जाती हैं। यदि किसी कालमें कोई सांसारिक फुरना हो भी जाती है तो भी उसके संस्कार नहीं जमते क्योंकि उनकी एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यभावसे गाढ़ स्थिति निरन्तर बनी रहती है।

इसलिये उनके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण अवगुणोंका अभाव होकर अहिंसा २, सत्य ३, अस्तेय ४, ब्रह्मचर्य ५, अपैशुनता ६, लज्जा, अमानित्व ७, निष्कपटता, शौच ८, सन्तोष ९, तितिक्षा १०, सत्सङ्ग, सेवा, यज्ञ, दान, तप ११, स्वाध्याय १२, शम १३, दम १४, विनय,

---

और कर्तृत्व अभिमान शेष रह जाता है। इसलिये सूक्ष्म वासना और अहंभावके त्यागको सातवीं श्रेणीका त्याग कहा है।

१ पूर्वोक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषकी तो विषयोंका विशेष संसर्ग होनेसे कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है, परंतु इस सातवीं श्रेणीके त्यागी पुरुषका विषयोंके साथ संसर्ग होनेपर भी उनमें आसक्ति नहीं हो सकती; क्योंकि उसके निश्चयमें एक परमात्माके सिवाय अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं। इसलिये इस त्यागको परवैराग्य कहा है। २ मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना। ३ अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना। ४ चोरीका सर्वथा अभाव। ५ आठ प्रकारके मैथुनोंका अभाव। ६ किसीकी भी निन्दा न करना। ७ सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना। ८ बाहर और भीतरकी पवित्रता (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी एवं यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जलमृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरकी शुद्धि कहते हैं और राग-द्वेष तथा कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है)। ९ तृष्णाका सर्वथा अभाव। १० शीत, उष्ण, सुख, दुःखादि द्वन्द्वोंका सहन करना। ११ स्वधर्म पालनके लिये कष्ट सहना। १२ वेद और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवान्के नाम और गुणों का कीर्तन। १३ मनका वशमें होना। १४ इन्द्रियोंका वशमें होना।

आर्जव १, दया २, श्रद्धा ३, विवेक ४, वैराग्य ५, एकान्तवास, अपरिग्रह ६, समाधान ७, उपरामता, तेज ८, क्षमा ९, धैर्य १०, अद्रोह ११, अभय १२, निरहंकारता, शान्ति १३ और ईश्वरमें अनन्यभक्ति इत्यादि सद्‌गुणोंका आविर्भाव स्वभावसे ही हो जाता है।

इस प्रकार शरीरसहित सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें वासना और अहंभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकीभावसे नित्य निरन्तर दृढ़ स्थिति रहना ज्ञानके तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

उपरोक्त गुणोंमेंसे कितने ही तो पहिली और दूसरी भूमिकामें ही प्राप्त हो जाते हैं, परंतु सम्पूर्ण गुणोंका आविर्भाव तो प्रायः तीसरी भूमिकामें ही होता है; क्योंकि यह सब भगवत्-प्राप्तिके अति समीप पहुंचे हुए पुरुषोंके लक्षण एवं भगवत् स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतु हैं; इसीलिये श्रीकृष्णभगवान्‌ने प्रायः इन्हीं गुणोंको श्रीगीताजी-

---

१ शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता। २ दुखियोंमें करुणा। ३ वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास। ४ सत् और असत् पदार्थका यथार्थ ज्ञान। ५ ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव। ६ ममत्वबुद्धिसे संग्रहका अभाव। ७ अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव। ८ श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। ९ अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना। १० भारी विपत्ति आनेपर भी अपनी स्थितिसे चलायमान न होना। ११ अपने साथ द्वेष रखनेवालोंमें भी द्वेषका न होना। १२ सर्वथा भयका अभाव। १३ इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें नित्य-निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

के १३वें अध्यायमें (श्लोक ७ से ११ तक) ज्ञानके नामसे तथा १६वें अध्यायमें (श्लोक १ से ३ तक) दैवी सम्पदाके नामसे कहा है।

तथा उक्त गुणोंको शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म माना है। इसलिये मनुष्यमात्रका ही इनमें अधिकार है, अतएव उपरोक्त सद्‌गुणोंका अपने अन्तःकरणमें आविर्भाव करनेके लिये सभीको भगवान्‌के शरण होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिए।

उपसंहार

इस लेखमें सात श्रेणियोंके त्यागद्वारा भगवत्-प्राप्तिका होना कहा गया है। उनमें पहिली पांच श्रेणियोंके त्यागतक तो ज्ञानकी प्रथम भूमिकाके लक्षण और छठी श्रेणीके त्यागतक दूसरी भूमिकाके लक्षण तथा सातवीं श्रेणीके त्यागतक तीसरी भूमिकाके लक्षण बताये गये हैं। उक्त तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुआ पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसका इस क्षणभंगुर, नाशवान्, अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगे हुए पुरुषका स्वप्नके संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, वैसे ही अज्ञाननिद्रासे जगे हुए पुरुषका भी मायाके कार्यरूप अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। यद्यपि लोकदृष्टिमें उस ज्ञानी पुरुषके शरीरद्वारा प्रारब्धसे सम्पूर्ण कर्म होते हुए दिखायी देते हैं, एवं उन कर्मोंद्वारा संसारमें बहुत ही लाभ पहुंचता है। क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्व-अभिमानसे रहित होनेके कारण उस महात्माके मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए आचरण लोकमें प्रमाणस्वरूप समझे जाते हैं और ऐसे पुरुषोंके भावसे ही शास्त्र बनते हैं, परंतु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवको प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी मायासे सर्वदा अतीत ही है; इसलिये वह न तो गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और

निद्रा आदिके प्राप्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा ही करता है। क्योंकि सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति आदिमें एवं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदिमें सर्वत्र उसका समभाव हो जाता है, इसलिये उस महात्माको न तो किसी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति और अप्रियकी निवृत्तिमें हर्ष होता है, न किसी अप्रियकी प्राप्ति और प्रियके वियोगमें शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुषका शरीर किसी कारणसे शस्त्रोंद्वारा काटा भी जाय या उसको कोई अन्य प्रकारका भारी दुःख आकर प्राप्त हो जाय तो भीं वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें अनन्यभावसे स्थित हुआ पुरुष उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता, क्योंकि उसके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण संसार मृगतृष्णाके जलकी भांति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय, वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका भाव वह स्वयं ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा प्रकट करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके, अज्ञाननिद्रासे चेतकर उक्त सात श्रेणियोंमें कहे हुए त्यागद्वारा परमात्माको प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषोंकी शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार साधन करनेमें तत्पर होना चाहिये। क्योंकि यह अति दुर्लभ मनुष्यका शरीर वहुत जन्मोंके अन्तमें परमदयालु भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है, इसलिये नाशवान्, क्षणभंगुर संसारके अनित्य भोगोंको भोगनेमें अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गीताकी श्लोक-सूची

—:०:—

अध्याय	धृतराष्ट्र	संजय	अर्जुन	श्रीभगवान्	पूर्ण संख्या
१	१	२५	२१	०	४७
२	०	३	६	६३	७२
३	०	०	३	४०	४३
४	०	०	१	४१	४२
५	०	०	१	२८	२९
६	०	०	५	४२	४७
७	०	०	०	३०	३०
८	०	०	२	२६	२८
९	०	०	०	३४	३४
१०	०	०	७	३५	४२
११	०	८	३३	१४	५५
१२	०	०	१	१९	२०
१३	०	०	०	३४	३४
१४	०	०	१	२६	२७
१५	०	०	०	२०	२०
१६	०	०	०	२४	२४
१७	०	०	१	२७	२८
१८	०	५	२	७१	७८
जोड़	१	४१	८४	५७४	७००

आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते ।
हरि-हिय-कमल-विहारिणि सुन्दर सुपुनीते ॥

कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि कामासक्तिहरा ।
तत्त्वज्ञान-विकाशिनि विद्या ब्रह्म परा ॥ जय०

निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी ।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि सब बिधि सुखकारी ॥ जय०

राग-द्वेष-विदारिणि कारिणि मोद सदा ।
भव-भय-हारिणि तारिणि परमानन्दप्रदा ॥ जय०

आसुरभाव-विनाशिनि नाशिनि तम रजनी ।
दैवी सद्गुण दायिनि हरि-रसिका सजनी ॥ जय०

समता, त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी ।
सकल शास्त्रकी स्वामिनि श्रुतियोंकी रानी ॥ जय०

दया-सुधा बरसावनि मातु ! कृपा कीजै ।
हरि-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ॥ जय०

—:: o ::—

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)